वर्ष - 2019

रश्मि

(महाविद्यालय पत्रिका)

अनजवित सिंह महाविद्यालय

बिक्रमगंज (रोहतास)

(वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय की अंगीभूत ईकाई)

Email : ascollegebkj438@gmail.com | Website : www.ascollegebikramganj.org

महाविद्यालय, बिक्रमगंज (रोहतास)

A. S. COLLEGE,

रश्मि

(महाविद्यालय पत्रिका)

संरक्षक

डॉ० सुधांशु शेखर भास्करम्

प्रधानाचार्य

संपादक मंडल

डॉ० ललन प्रसाद सिंह

डॉ० राजबहादुर राय

श्री प्रभात कुमार

लाल जी टंडन
LAL JI TANDON

राजभवन
RAJ BHAWAN

राज्यपाल, बिहार
GOVERNOR OF BIHAR

03 मई, 2019

संदेश

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि ए०एस० कॉलेज, विक्रमगंज, रोहतास की महाविद्यालयीय पत्रिका **'रश्मि'** का आगमी अंक शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है।

आशा है, इस पत्रिका के प्रकाशन से महाविद्यालय-परिवार की युवा प्रतिभाओं की ज्ञान-रश्मियों को विकीर्ण होने तथा उनकी सृजनशीलता को विकसित होने का समुचित अवसर उपलब्ध हो सकेगा।

मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन के प्रति अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ।

(लाल जी टंडन)

Phone : 0612-2786100 - 107, **Fax :** 0612-2786178
e-mail : governorbihar@nic.in

प्रो० डी० पी० तिवारी
कुलपति
Prof. D. P. Tewari
VICE-CHANCELLOR

वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय
आरा – 802301 (बिहार)
VEER KUNWAR SINGH UNIVERSITY
ARA - 802301(BIHAR)
Fax & Telephone : 06182-239369 (O)
E-mail : : vcvksuarrah@gmail.com

पत्रांक / Ref. No. : .... दिनांक / Date : ....

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि अनजवित सिंह कॉलेज, बिक्रमगंज द्वारा पत्रिका 'रश्मि' का प्रकाशन किया जा रहा है।

पत्रिका का प्रकाशन शिक्षा जगत को आलोकित करने का एक सशक्त माध्यम है। इससे शिक्षकों और विद्यार्थियों को अपने विचारों और शैक्षणिक प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने का एक उत्कृष्ट अवसर प्राप्त होगा।

आशा है कि समाज की ज्वलंत समस्याओं और उच्च शिक्षा से संबंधित शोधपरक आलेख पत्रिका में संग्रहीत होंगे जो विशेषकर युवाओं के लिए लाभकारी तथा प्रेरणादायक सिद्ध होंगे ।

(कुलपति)
वीर कुंवर सिंह
विश्वविद्यालय, आरा

प्रो० (डा०) नन्द किशोर साह
प्रतिकुलपति

Prof. (Dr) Nand Kishore Sah
PRO VICE-CHANCELLOR

वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय
आरा - 802301 (बिहार)
VEER KUNWAR SINGH UNIVERSITY
ARA - 802301(BIHAR)
Phone : 06182-239113
Mob. : +91-9471053097
Fax : 06182-239369 (o)
E-mail : nandksah1@gmail.com

पत्रांक / Ref. No. : ....   दिनांक / Date : ....

शुभकामना संदेश

बड़े हर्ष की बात है कि अनजवित सिंह महाविद्यालय, जो वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा का एक महत्वपूर्ण सरकारी महाविद्यालय है, 'रश्मि' नामक पत्रिका का प्रकाशन करने जा रहा है। इस प्रकार की पत्रिकाएँ दरअस्ल संस्थानों के भूत, वर्तमान और भविष्य के दर्पण-सदृश हैं। इनसे न सिर्फ ज्ञान-सुख व ज्ञान-वैभव की प्राप्ति होती है, अपितु सुधी लेखक अपने-अपने संचित सुविचारों को समाज में बाँटकर यश भी प्राप्त करते हैं। 'रश्मि' के प्रकाशन के लिए महाविद्यालय परिवार और प्रधानाचार्य को कोटिशः बधाई ।

आशा है, शिक्षकों के साथ छात्रों व अभिभावकों के लिए भी यह उपयोगी सिद्ध होगी। कामना करता हूँ, कि यह शैक्षणिक संस्थान इसी प्रकार प्रगति करता रहे, छात्र, अभिभावक और समाज का मार्गदर्शन करते हुए देश की उन्नति में ठोस भूमिका निभाता रहे ।

शुभ कामना सहित ।

नन्द कि॰ साह
30.4.19

(नन्द किशोर साह)
प्रति कुलपति
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय
आरा-802301

कर्नल श्यामानन्द झा
कुलसचिव
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि अनजबित सिंह महाविद्यालय बिक्रमगंज, रोहतास द्वारा पत्रिका **''रश्मि''** का प्रकाशन पूर्व की भांति इस वर्ष भी किया जा रहा है। पत्रिका का प्रकाशन शिक्षा जगत को आलोकित करने का एक सशक्त माध्यम है। इससे शिक्षकों, कर्मियों और विद्यार्थियों को अपने विचारों और शैक्षणिक प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने का एक उत्कृष्ट अवसर प्राप्त होगा ।

आशा है कि समाज की ज्वलंत समस्याओं और उच्च शिक्षा से संबंधित शोद्यपरक लेख **'रश्मि'** पत्रिका में संगृहीत होगें जो विशेषकर छात्र/छात्राओं के लिए लाभकारी तथा प्रेरणादायक साबित होंगे तथा यह अंक पाठकों के समक्ष महाविद्यालय का एक सजीव चित्रण प्रस्तुत करेगा ।

मैं महाविद्यालय के उज्जवल भविष्य तथा पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए हार्दिक मंगल कामना करता हूँ।

(कर्नलश्यामानंद झा)
कुलसचिव

वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय

आरा - 802 301 (बिहार)

Ph. & Fax : 06182 - 239209

अध्यक्ष, छात्र कल्याण

(प्रो० कृष्ण कान्त सिंह)

मो० नं०-8825197126

संदेश

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि अनजबित सिंह कॉजेज, बिक्रमगंज 'रशिम' पत्रिका का प्रकाशन करने जा रहा है। अनजबित सिंह कॉलेज का इतिहास काफी समृद्ध रहा है एवं कॉलेज के योग्य एवं अनुभवी शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों का मार्गदर्शन कर, न केवल विद्यार्थियों का भविष्य बल्कि देश का भविष्य संवारने का उदात्त कार्य किया जाता है। ग्रामीण परिवेश में स्थित होने के बावजूद यह कॉलेज आधुनिक संसाधनों से परिपूर्ण है एवं आस-पास के विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण के साथ-साथ उन्हें रोजगारपरक शिक्षा देने का पवित्र कार्य करता है। यहाँ के शिक्षक एवं शिक्षकेतर कर्मचारी दृढ़ता के साथ अपने कर्त्तव्यों का निर्वाहन करते हैं। इस मौके पर मैं कॉलेज के प्राचार्य, सभी शिक्षकों एवं शिक्षकेत्तर बंधुओं का आभार प्रकट करता हूँ एवं इनके साथ-साथ समस्त छात्र-छात्राओं के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

एतदर्थ आभार !

अधयक्ष, छात्र कल्याण

(प्रो0 के0 के0 सिंह)

वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

अनुक्रमणिका

क्रम.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	प्रधानाचार्य की कलम से...	– डा0 सुधांशु शेखर भास्करम्	
2.	संपादकीय	– डा0 ललन प्रसाद सिंह	
3.	महाविद्यालय का संक्षिप्त इतिहास – एक नज़र	– चन्द्रशेखर सिंह	1
4.	शांति एवं समृद्धि के स्वप्नद्रष्टाःस्वामी विवेकानन्द	– डॉ. रामाशंकर सिंह	3
5.	भारतीय दर्शन का भावी स्वरूप	– डॉ. संतोष कुमार सिंह	7
6.	खाद्य सुरक्षा : वर्त्तमान परिदृश्य एवं भावी चुनौतियाँ	– डॉ. के. राय	10
7.	विनयशीलता : धर्म की आत्मा	– अरूण कुमार सिंह	12
8.	सेवा निवृति का यथार्थ तथा समाधान	– प्रो. शंभु शंकर सिंह	14
9.	आधी दुनिया का सच	– अक्षय कुमार 'प्यारे जी'	16
10.	गरीबी : वर्त्तमान परिदृश्य एवं भावी चुनौतियाँ	– डॉ. के. राय	19
11.	शिक्षा की दशा, दिशा एवं भावी चुनौतियाँ	– श्री वीरेन्द्र प्रसाद सिंह	21
12.	हिन्दी पत्रकारिता : तब और अब	– रामकृष्ण यादव	24
13.	तलाश मंजिल की	– रणजीत कुमार	29
14.	हमारे जीवन का आदर्श : शाकाहार	– इन्द्रसेन कुमार	30
15.	रोहतास जिला की वनवासी जाति के सामाजिक जीवन का ऐतिहासिक विवेचन	– मिथिलेश कुमार	32
16.	ग्रामीण निर्धनता निवारण एवं रोजगार सृजन में मनरेगा की भूमिका	– प्रभाकर कुमार	35
17.	मनरेगा परियोजनाओं का जल–संरक्षण एवं पर्यावरण–संतुलन पर प्रभाव	– रंजीत कुमार राय	37
18.	उदारीकरण के युग में कर्मचारी शिक्षा का महत्व	– डॉ0 बाबू लाल राम	39
19.	रोजगार और जन–शक्ति आयोजन वर्त्तमान परिदृश्य एवं भावी चुनौतियाँ	– अविनाश कुमार	41
20.	ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण में दूरस्त शिक्षा की भूमिका	– डॉ. आनन्द कुमार	43
21.	भारत में दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण	– कमलेश कुमार कौशल	45
22.	My Eighteenth Birthday	– **Smriti Bhaskram**	47
23.	अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातीय समाज पर मनरेगा का प्रभाव	– हीरा कुमार	48
24.	खेतिहर मजदूरों की	– प्रमिला कुमारी	50
25.	रोहतास जिला में बाल–श्रम का स्वरूप...	– श्रीमती संगीता कुमारी	52
26.	चावल उद्योग की समस्याएँ एवं संभावनाएँ	– सुश्री श्वेता निशा	54
27.	Modernism....	– Prabhat Kumar	56
28.	**उपन्यास लेखन**	– डॉ. ललन प्रसाद सिंह	59
29.	**राष्ट्रीय सेवा योजना के बढ़ते कदम**	– डॉ. राज बहादुर राय	61
30.	**भजन, राष्ट्रीय गीत**	– डॉ. राज बहादुर राय	63

’U 6 6 %KDVNDUDP

Principal

प्रधानाचार्य की कलम से .....

अंजबित सिंह माहविद्यालय की स्थापना तत्कालीन मगध विश्वविद्यालय के अन्तर्गत रोहतास (शाहाबाद) के छोटा–सा कस्बा बिक्रमगंज में हुई, जो अब वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय के अर्न्तगत है। इस महाविद्यालय से शुरूआती दिनों में पत्रिका 'रश्मि' का प्रकाशन होता था। बाद के वर्षों में अनेक व्यवधानों के कारण इस पत्रिका के प्रकाशन पर ग्रहण–सा लग गया था, जिसके कारण ''रश्मि'' के प्रकाशन में महाविद्यालय असफल रहा। अब हम महाविद्यालय परिवार के सहयोग से इसका पुनः प्रकाशन करने जा रहे हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त हर्ष और महाविद्यालय के लिए गौरव की बात है। हमें विश्वास है कि 'रश्मि' सुबह की पहली किरण की भाँति छात्र/छात्राओं के साथ महाविद्यालय परिवार को भी प्रकाशमान करेगी। हमने शिक्षकों और कर्मचारियों के साथ मिलकर आनेवाली नई पीढी को शिक्षित कर उनके संस्कार और चरित्र को उद्वात्त बनाते हुए तथा संकल्प लेकर बेहतर समाज की संरचना के लिए कदम बढाया है, जिसमें 'रश्मि' छात्रों/शिक्षकों/कर्मचारियों की मेधा और प्रतिभा को प्रदर्शित करने का एक मंच प्रदान करेगी।

हमारा महाविद्यालय हमारे विश्वविद्यालय के गिने–चुने गरिमामय महाविद्यालयों की श्रेणी में हुआ करता था। समय परिवर्तनशील है। बदलते समय में मानवीय मूल्यों में गिरावट भी आती है। कई सम–विषम परिस्थितियों में हमारा कॉलेज परिसर भी इससे अछूता नहीं रहा है, फिर भी महाविद्यालय परिवार हर झंझावात को झेलते हुए विषम परिस्थितियों में भी अपने धैर्य और कर्तब्य के बल पर महाविद्यालय का अस्तित्व और गरिमा को सिर्फ कायम ही नहीं रखा है, बल्कि शिक्षा को नये आयाम तक पहुँचाने में सतत प्रयत्नशील भी रहा है।

इस महाविद्यालय में कला और विज्ञान के विषयों में इंटरमीडिएट से लेकर स्नातकोत्तर तक की पढाई होती है। महाविद्यालय में शिक्षण कार्य के लिए जहाँ कुशल शिक्षक हैं, वहीं प्रयोगशालाओं में नवीनतम उपकरण भी लगाए गए हैं। यहाँ बी. सी. ए. की पढ़ाई होती है, जिसकी मान्यता विश्वविद्यालय से प्राप्त है। इसका लैब नये उपकरणों एवं संसाधनों से लैस और आधुनिक रूप से सुसज्जित है। यहाँ नालंदा खुला विश्वविद्यालय का अध्ययन केन्द्र भी अवस्थित है। हमारे महाविद्यालय में दो–दो स्मार्ट क्लासेज एवं एक आधुनिक सुसज्जित लैंगवेज लैब एवं स्वयं लैब की सुविधा उपलब्ध है। महाविद्यालय में एक समृद्ध और पूरी तरह कम्प्यूटराइज्ड पुस्तकालय है, जहाँ स्मार्ट आई. डी. कार्ड से छात्र/छत्राओं के बीच पुस्तकों का वितरण होता है। विद्यार्थियों को इंटरनेट से अध्ययन करने के लिए सरकार के सात निश्चिय के तहत महाविद्यालय परिसर वाई–फाई युक्त है और कार्यालय भी कम्प्यूटराइज्ड है। महाविद्यालय के पास्र

अपना वेबसाइट भी है। इस तरह से हमने महाविद्यालय परिसर में शिक्षा को आधुनिक बनाते हुए पूरी दुनिया से जोड़ने का प्रयास किया है। महाविद्यालय ने नारी शिक्षा को ध्यान में रखते हुए छात्राओं के लिए कॉमन रूम और महिला छात्रावास की समुचित व्यवस्था कर के नारी उत्थान पर विशेष ध्यान रखने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत हम विविध प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन कर गांवों को जहाँ शिक्षा से जोड़ने का प्रयास करते हैं वहीं मानव को स्वच्छता के प्रति जागरूक करने की पहल भी करते हैं। मानवता, स्वच्छता और प्रकृति के बीच समन्वय को स्थापित करने के लिए ही हम " Green Campus, Clean Campus" की नीति को आत्मसात करते हैं।

कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है, इसलिए हमारे महाविद्यालय में छात्र छात्राओं के लिए खेलकूद की प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है। खेल कूद का प्रशिक्षण देने के लिए हमारे यहाँ एक कुशल प्रशिक्षक भी उपलब्ध हैं। कॉलेज परिसर में साइकिल, मोटर साइकिल और कार पार्किंग की सुविधा उपलब्ध है। महाविद्यालय परिसर की निगरानी के लिए सी. सी. टी. वी. कैमरा का भी जाल बिछा हुआ है।

पत्रिका में शोद्यार्थियों के लिए जहाँ अपना संदर्भित आलेख को प्रकाशित कराना अनिवार्य है तो वहीं विद्यार्थियों के लिए रचनात्मक और सृजनात्मक क्षमता के विकाश के लिए यह अवसर प्रदान करती है। 'रश्मि' पत्रिका शिक्षकों, शिक्षकेत्तर कर्मियों एवं विद्यार्थियों के अन्दर प्रस्फुटित होने वाली कला, विज्ञान और सहित्य की संरचना को कलमबद्ध कर प्रकाश में लाने का साधन है। हमें विश्वास है कि यह पत्रिका महाविद्यालय परिवार की प्रतिभा को निखारने में मील का पत्थर (Mile Stone) साबित होगी।

''समय की शिला पर कुछ ऐसा लिखा जाए'
जो पवित्र पुस्तक सा ही सुबह–शाम पढ़ा जाए।''

– डॉ. सुधांशु शेखर भास्करम्

GREEN CAMPUS CLEAN CAMPUS

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

'U 66 %KDVNDUDP
Principal

प्रधानाचार्य की कलम से .....

अंजबित सिंह माहविद्यालय की स्थापना तत्कालीन मगध विश्वविद्यालय के अन्तर्गत रोहतास (शाहाबाद) के छोटा–सा कस्बा बिक्रमगंज में हुई, जो अब वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय के अर्न्तगत है। इस महाविद्यालय से शुरूआती दिनों में पत्रिका 'रश्मि' का प्रकाशन होता था। बाद के वर्षों में अनेक व्यवधानों के कारण इस पत्रिका के प्रकाशन पर ग्रहण–सा लग गया था, जिसके कारण ''रश्मि'' के प्रकाशन में महाविद्यालय असफल रहा। अब हम महाविद्यालय परिवार के सहयोग से इसका पुनः प्रकाशन करने जा रहे हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त हर्ष और महाविद्यालय के लिए गौरव की बात है। हमें विश्वास है कि 'रश्मि' सुबह की पहली किरण की भाँति छात्र/छात्राओं के साथ महाविद्यालय परिवार को भी प्रकाशमान करेगी। हमने शिक्षकों और कर्मचारियों के साथ मिलकर आनेवाली नई पीढी को शिक्षित कर उनके संस्कार और चरित्र को उद्वात्त बनाते हुए तथा संकल्प लेकर बेहतर समाज की संरचना के लिए कदम बढाया है, जिसमें 'रश्मि' छात्रों/शिक्षकों/कर्मचारियों की मेधा और प्रतिभा को प्रदर्शित करने का एक मंच प्रदान करेगी।

हमारा महाविद्यालय हमारे विश्वविद्यालय के गिने–चुने गरिमामय महाविद्यालयों की श्रेणी में हुआ करता था। समय परिवर्तनशील है। बदलते समय में मानवीय मूल्यों में गिरावट भी आती है। कई सम–विषम परिस्थितियों में हमारा कॉलेज परिसर भी इससे अछूता नहीं रहा है, फिर भी महाविद्यालय परिवार हर झंझावात को झेलते हुए विषम परिस्थितियों में भी अपने धैर्य और कर्तब्य के बल पर महाविद्यालय का अस्तित्व और गरिमा को सिर्फ कायम ही नहीं रखा है, बल्कि शिक्षा को नये आयाम तक पहुँचाने में सतत प्रयत्नशील भी रहा है।

इस महाविद्यालय में कला और विज्ञान के विषयों में इंटरमीडिएट से लेकर स्नातकोत्तर तक की पढाई होती है। महाविद्यालय में शिक्षण कार्य के लिए जहाँ कुशल शिक्षक हैं, वहीं प्रयोगशालाओं में नवीनतम उपकरण भी लगाए गए हैं। यहाँ बी. सी. ए. की पढ़ाई होती है, जिसकी मान्यता विश्वविद्यालय से प्राप्त है। इसका लैब नये उपकरणों एवं संसाधनों से लैस और आधुनिक रूप से सुसज्जित है। यहाँ नालंदा खुला विश्वविद्यालय का अध्ययन केन्द्र भी अवस्थित है। हमारे महाविद्यालय में दो–दो स्मार्ट क्लासेज एवं एक आधुनिक सुसज्जित लैंगवेज लैब एवं स्वयं लैब की सुविधा उपलब्ध है। महाविद्यालय में एक समृद्ध और पूरी तरह कम्प्यूटराइज्ड पुस्तकालय है, जहाँ स्मार्ट आई. डी. कार्ड से छात्र/छत्राओं के बीच पुस्तकों का वितरण होता है। विद्यार्थियों को इंटरनेट से अध्ययन करने के लिए सरकार के सात निश्चिय के तहत महाविद्यालय परिसर वाई–फाई युक्त है और कार्यालय भी कम्प्यूटराइज्ड है। महाविद्यालय के पास

अपना वेबसाइट भी है। इस तरह से हमने महाविद्यालय परिसर में शिक्षा को आधुनिक बनाते हुए पूरी दुनिया से जोड़ने का प्रयास किया है। महाविद्यालय ने नारी शिक्षा को ध्यान में रखते हुए छात्राओं के लिए कॉमन रूम और महिला छात्रावास की समुचित व्यवस्था कर के नारी उत्थान पर विशेष ध्यान रखने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत हम विविध प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन कर गांवों को जहाँ शिक्षा से जोड़ने का प्रयास करते हैं वहीं मानव को स्वच्छता के प्रति जागरूक करने की पहल भी करते हैं। मानवता, स्वच्छता और प्रकृति के बीच समन्वय को स्थापित करने के लिए ही हम " Green Campus, Clean Campus" की नीति को आत्मसात करते हैं।

कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है, इसलिए हमारे महाविद्यालय में छात्र छात्राओं के लिए खेलकूद की प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है। खेल कूद का प्रशिक्षण देने के लिए हमारे यहाँ एक कुशल प्रशिक्षक भी उपलब्ध हैं। कॉलेज परिसर में साइकिल, मोटर साइकिल और कार पार्किंग की सुविधा उपलब्ध है। महाविद्यालय परिसर की निगरानी के लिए सी. सी. टी. वी. कैमरा का भी जाल बिछा हुआ है।

पत्रिका में शोद्यार्थियों के लिए जहाँ अपना संदर्भित आलेख को प्रकाशित कराना अनिवार्य है तो वहीं विद्यार्थियों के लिए रचनात्मक और सृजनात्मक क्षमता के विकाश के लिए यह अवसर प्रदान करती है। 'रश्मि' पत्रिका शिक्षकों, शिक्षकेत्तर कर्मियों एवं विद्यार्थियों के अन्दर प्रस्फुटित होने वाली कला, विज्ञान और सहित्य की संरचना को कलमबद्ध कर प्रकाश में लाने का साधन है। हमें विश्वास है कि यह पत्रिका महाविद्यालय परिवार की प्रतिभा को निखारने में मील का पत्थर (Mile Stone) साबित होगी।

''समय की शिला पर कुछ ऐसा लिखा जाए'
जो पवित्र पुस्तक सा ही सुबह–शाम पढ़ा जाए।''

– डॉ. सुधांशु शेखर भास्करम्

GREEN CAMPUS CLEAN CAMPUS

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

संपादकीय .....

'रश्मि' पत्रिका के पुनर्प्रकाशन से हम सभी गौरवान्वित अनुभव करते हैं। यह अपने अभिधान से ही ज्ञान की परिचायिका है। भारतीय संस्कृति में ज्योति, रश्मि व प्रकाश ज्ञान के प्रतीक रहे हैं। हमारे मनीषियों एवं पूर्वजों ने सत्य की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर चलने के लिए प्रेरित किया है। प्रकाश की ओर चलने का निहितार्थ ही है कि हम सुशिक्षित, सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनें। डॉ० अम्बेदकर ने भी शिक्षा पर सर्वाधिक बल देते हुए शिक्षित बनने की बात कही है। उन्होंने शिक्षा को शेरनी का दूध कहा है। हमारी सरकार शिक्षा की गुणवत्ता विकसित करने के लिए प्रयासरत है। विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता में संवर्द्धन करने की दिशा में अनवरत चेष्टारत हैं। शिक्षण–संस्थाएँ नए–नए ज्ञान का सृजन–स्थल हैं। शिक्षा के कुछ महत्वपूर्ण ध्येय हैं, यथा– (1) शिक्षा जानने के लिए (2) शिक्षा कार्य करने के लिए (3) शिक्षा सह जीवन के लिए (4) शिक्षा व्यक्ति की संभावनाओं को साकार रूप देने के लिए। हम समझते हैं, इस दिशा में 'रश्मि' पत्रिका सबों को कुछ मदद करती है।

हमारे युग में पत्रकारिता लोक, राष्ट्र तथा विश्व–चेतना को नवोन्मेष करनेवाली और दिशा निर्धारित कर देनेवाली एक सारस्वत शक्ति के रूप में उभकर सामने आई है। मीडिया का तो यह प्राण ही है। यह अपना अभिप्रेत समय के साथ–साथ बदलते रहती है। उसे मानव के नैतिक मूल्यों से भी समन्वित किया जाता है। आज पत्रकारिता मानव–संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन चुकी है। लगता है– मनुष्य, समाज, राष्ट्र तथा जगत् की धड़कन व स्पंदन इसी के माध्यम से सर्वत्र सुनाई पड़ता है। इसके संदर्भ में John Honenberg लिखते हैं कि : Some say accuracy, others moral values. Some believe it is superior education; other a flaming competitive spirit. पत्रकारिता के माध्यम से भी शिक्षा देने की लगातार कोशिश की जाती है।

विद्या व ज्ञान के प्रचार–प्रसार में पत्रकारिता की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। पत्रिका केवल सूचना, समाचार, तथ्य तथा ज्ञान की संवाहिका ही नहीं है, वरन् वह व्यक्ति की सृजनात्मक एवं अनुसंधानात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति तथा विकास का एक सशक्त साधन भी है। इसका उद्देश्य तो निर्विवाद है ही। पत्रिका के आयाम विविध हैं : कला, विज्ञान, साहित्य, वाणिज्य, खेलकूद इत्यादि से पत्रिका का संबंध है। 'उदंत मार्तन्ड' से हिन्दी पत्रकारिता की शुरूआत मानी जाती है।

महाविद्यालय–पत्रिका शिक्षकों, छात्र–छात्राओं तथा शोधार्थियों के लेखन के लिए स्पेस देती है। 'रश्मि' अपने उद्देश्यों के प्रति समर्पित है। सम्पर्क एवं सूचना के बावजूद, लेख तथा सृजन जितना प्राप्त होना चाहिए, नहीं हो सका। 'रश्मि' की अन्तर्वस्तु तथा कलेवर को विस्तृत नहीं किया जा सका। जिन रचनाकारों, लेखकों, विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की रचनाएं ससमय प्राप्त हुईं, उनको 'रश्मि' के इस अंक में प्रकाशित किया गया है।

पत्रिका–प्रकाशन में प्रधानाचार्य डॉ० सुधांशु शेखर भास्करम् ने गहरी अभिरूचि प्रदर्शित की है। सभी रचनाकारों एवं सहयोगियों को आभार प्रकट करते हुए, हम 'रश्मि' पत्रिका को आपके बीच प्रस्तुत करते हैं।

– ललन प्रसाद सिंह

महाविद्यालय का
संक्षिप्त इतिहास – एक नज़र

चन्द्रशेखर सिंह

प्रधान सहायक (से०नि०)
ए.एस. कॉलेज, बिक्रमगंज (रोहतास)

"न जाने प्रभु के किस अमंगल में हमारा मंगल छिपा है, हम नहीं जानते"। विधि की विडम्बना भी विचित्र होती है। बड़े लोगों यानि राजा, महाराजा, जमींदार या उद्योगपति के सहयोग की राशि से निर्मित कार्य तो महत्वपूर्ण है ही, परन्तु एक साधारण किसान द्वारा अपनी सम्पति की बहुत बड़ी राशि, हिस्सेदारी एवं पूर्ण जीवन उसके निर्माण एवं विकास पर न्योवछावर करना, संघर्ष, त्याग और समर्पण का बेमिसाल उदाहरण है।

दुनियां में कभी–कभार विरले योग्य पुरूष पैदा होते हैं। ग्रामीण परिवेश के गांव–गवई की सोंधी मिट्टी में एक साधारण किसान के घर एक गुदड़ी का लाल पैदा हुआ जिसने अपने चार भाईयों स्व. नेपाल सिंह, स्व. भुनेश्वर सिंह, स्व. मुनेश्वर सिंह एवं स्व. भगवती सिंह में सबसे बड़े होने का गौरव प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आधार पर इतिहास की रचना कर डाली।

उसी इतिहास पुरूष में धर्मनिष्ठ, दानवीर एवं शिक्षा प्रेमी धावाँ निवासी माननीय स्व. नेपाल सिंह के मन में अपने पिता स्व. अनजवित सिंह के नाम पर एक महाविद्यालय स्थापित करने की पुनीत भावना जागृत हुई जो बाल सखा न्यायमूर्ति स्व. अनन्त सिंह के सत् परामर्श एवं प्रेरण से और बलवती हो उठी। फलस्वरूप इनके द्वारा अपने परम पूज्य पिता के नाम पर 28 अगस्त 1957 को इस महाविद्यालय का शिलान्यास किया गया। दाता संस्थापक तीनों भाइयों ने उस समय दो लाख नगद रूपये एवं 25 बीघे जमीन का एक दस्तावेज लिखकर अपनी सम्पति की बहुत बड़ी राशि महाविद्यालय संचालन के लिए दान स्वरूप अर्पित की एवं महाविद्यालय भवन के नीचले तल्ले का निर्माण कार्य अतिरिक्त धन द्वारा अपने परिश्रम एवं देख–रेख में कराया।

यह महाविद्यालय बिहार विश्वविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय एवं मगध विश्वविद्यालय के अन्तर्गत मार्च 1976 तक सम्बद्ध महाविद्यालय के रूप में संचालित होता रहा। अप्रैल 1976 में मगध विश्वविद्यालय द्वारा इसे अंगीभूत ईकाई का दर्जा प्राप्त हुआ। नवम्बर 1992 में वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय की स्थापना के उपरान्त यह महाविद्यालय इस नये विश्वविद्यालय की एक अंगीभूत ईकाई के रूप में संचालित हो रहा है।

अपने स्थापना काल से लेकर अंगीभूतीकरण के पूर्व महाविद्यालय शासी निकाय की देखरेख में एक सम्बद्ध महाविद्यालय के रूप में संचालित होता रहा। उदार ह्रदय दाता संस्थापक स्व. नेपाल सिंह, स्व. मुनेश्वर सिंह, स्व. न्यायमूर्ति अनन्त सिंह, स्व. न्यायमूर्ति कन्हैया सिंह तथा स्व. विष्णुदेव नारायण सिंह, कुलपति राँची विश्वविद्यालय जैसे शिक्षाविद् एवं महान विभूतियों ने शासी निकाल के अध्यक्ष, सचिव एवं सदस्य के रूप में महाविद्यालय के चतुर्दिक विकास में अमूल्य योगदान दिया है। स्व. विश्वनाथ सिंह एवं स्व. डॉ0 कुंज बिहारी सिंह प्राचार्य के रूप में उल्लेखनीय कार्यों के फलस्वरूप महाविद्यालय के इतिहास में सदैव अमर रहेंगें।

महाविद्यालय अंगीभूत्तीकरण (1976) के पूर्व अध्यापन, अनुशासन, खेलकूद, सांस्कृतिक गतिविधियों आदि क्षेत्रों में अपनी गरिमा को प्राप्त कर लिया था।

सर्वप्रथम इसे कला–संकाय में बिहार विश्वविद्यालय से सम्बद्धता प्राप्त हुई। 1966 में विज्ञान संकाय में मगध विश्वविद्यालय से सम्बद्धता प्राप्त हुई। कला संकाय में हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञाान, इतिहास एवं दर्शनशास्त्र तथा विज्ञान संकाय में रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, गणित, वनस्पतिविज्ञान एवं जन्तुविज्ञान में प्रतिष्ठा स्तर तक पठन–पाठन की व्यवस्था है। वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा द्वारा व्यावसायिक पाठयक्रम के अन्तर्गत 2005–08 से बी.सी.ए. पढ़ाई की अनुमति तथा सत्र 2007–08 से इतिहास एवं अर्थशास्त्र विषय में स्नातकोत्तर की पढ़ाई होती है।

महाविद्यालय का परीक्षाफल सदा उत्कृष्ट रहा है। इंटर एवं स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तरीय परीक्षाओं में इस महाविद्यालय के छात्र/छात्रा बोर्ड एवं वि.वि. स्तर पर प्रथम एवं द्वितीय स्थान प्राप्त करते रहे हैं। यहाँ के मेधावी छात्र/छात्रा विश्वविद्यालय स्तर पर आयोजित खेल–कूद एवं सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में प्रथम एवं द्वितीय स्थान प्राप्त कर महाविद्यालय के स्वाभिमान को गौरव–शिखर स्पर्श कराया है।

यह महाविद्यालय अनुमण्डल का एकलौता अंगीभूत ईकाई है, जहाँ सुदूर गांव–गवई के गरीब, किसान, मजदूर और समाज के सबसे कमजोर लोगों के बच्चें कम खर्च में शिक्षा ग्रहण करते हैं। वाणिज्य संकाय एवं स्नातकोत्तर कला एवं विज्ञान के अन्य विषयों में पढ़ाई नहीं होने के कारण निर्धन परिवार के छात्र/छात्राएँ उच्च शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रह जाते हैं।

महाद्यिलाय में अध्यापन कार्य हेतु पर्याप्त कमरों का अभाव है। साथ ही महाविद्यालय का खेल मैदान एवं बहुत खाली प्लॉट घेराबंदी के अभाव में असुरक्षित एवं चारागाह बना हुआ है तथा असामाजिक तत्वों एवं भू–माफियों द्वारा षडयंत्र के तहत अतिक्रमित एवं हड़पने का प्रयास किया जा रहा है। महाविद्यालय की जमीन की सुरक्षा हेतु महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, राज्य सरकार, प्रबुद्धजनों, शिक्षा प्रेमियों, सतत् जागरूक एवं आमजनों के साथ छात्रों का सहयोग अपेक्षित है।

''शांति एवं समृद्धि के स्वप्नद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द''

डा० रामाशंकर सिंह

प्राध्यापक (अवकाश प्राप्त), अर्थशास्त्र विभाग,
ए.एस.कॉलेज बिक्रमगंज, (रोहतास)
पूर्व उपाध्यक्ष, अखिल भारतीय विश्वविद्यालय एवं
महाविद्यालय शिक्षक महासंघ, पूर्व महासचिव, बीर कुँवर
सिंह विश्वविद्यालय, शिक्षक संघ, आरा

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कलकत्ता के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्र नाथ था। इनके पिताजी वकील एवं माताजी धर्मपरायण गृहिणी थीं। अतिथि सत्कार एवं जरूरतमन्द व्यक्तियों की उदारतापूर्वक सहायता के लिए परिवार विख्यात था। जिज्ञासा, साहस, चारित्रिक शुचिता तथा शारीरिक सौष्ठव के लिए बालक नरेन्द्र अपने समवयस्कों तथा पड़ोसियों के बीच प्रशंसित थे। स्कूली शिक्षा के बाद कॉलेज में दाखिले के साथ सम्पर्क का दायरा बढ़ा। हिन्दू धर्म की कुरीतियों के विरोध तथा पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति की अच्छाइयों से प्रभावित होकर कलकत्ता में स्थापित ब्रह्म समाज से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इसका उद्देश्य प्राचीन काल से 12 प्रचलित धार्मिक कर्मकाण्ड, पुरोहिती प्रथा की समाप्ति, नारीमुक्ति तथा बाल–विवाह आदि को समाप्त करना था। नरेन्द्र भी ब्रह्म समाज के सदस्य बन गये। लेकिन शीघ्र ही नरेन्द्र को ब्रह्म समाज के उद्देश्य सतही एवं निरर्थक प्रतीत होने लगे, क्योंकि इनसे उनकी आध्यात्मिक जिज्ञासा एवं जरूरतों की पूर्ति नहीं होती थी। उन्होंने हर्बट, ह्यूम, स्पेंशर एवं जॉन स्टुअर्ट मिल का गहन अध्ययन किया। इससे वे ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व के बारे में अनिश्चय की स्थिति में हो गये। शादी के प्रस्ताव को ठुकराते हुए उन्होंने ढृढ़ निश्चय किया कि पूर्णतः पवित्र एवं सांसारिकता से पूर्णतः निःस्पृक्त रहना है, ताकि इस शरीर एवं आत्मा को किसी महान काम में लगाया जा सके। लेकिन वह महान कार्य क्या होगा?वह कौन–सा व्यक्ति होगा, जिस पर पूरी तरह विश्वास किया जा सकेगा, जो मार्गदर्शन कर सकेगा?इन बातों को लेकर उनकी आत्म बेचैन हो गई।

नरेन्द्र के जीवन में परिवर्त्तन का अध्याय 1881 में इनके पारिवारिक मित्र के घर श्री रामकृष्ण परमहंस जी से मुलाकात के बाद प्रारम्भ हुआ। परमहंस जी का दाढ़ीयुक्त चेहरा, अधेड़ उम्र, एक बच्चे की सरलता, खुशी व्यक्त करने के लिए चिल्लाना, माँ काली–काली कहना, बांग्ला भाषा में दर्शन से भरी बातें, सब कुछ देख–सुनकर नरेन्द्र घबड़ा गये थे। लेकिन केशव सेन जैसे ब्रह्म समाजी और अपने दर्शनशास्त्र के अंग्रेज प्रोफेसर हेस्टी से परमहंस की प्रशंसा सुनकर नरेन्द्र की उनमें जिज्ञासा बढ़ी और दक्षिणेश्वर में इनका आना–जाना प्रारम्भ हुआ। 1881 से 16 अगस्त, 1886 (परमहंस जी मृत्यु) तक नरेन्द्र का दक्षिणेश्वर (परमहंस जी जहाँ काली मंदिर में रहते थे) से जुड़ाव, कई चमत्कारिक एवं अलौकिक घटनाओं जैसे मात्र एक स्पर्श से नरेन्द्र को समाधि के धरातल पर पहुँचाना, परहमंस जी द्वारा नरेन्द्र को माँ काली से इच्छित वस्तु की मांग करने को कहना, ध्यान–धारण, समाधि की विधि की शिक्षा देना, मृत्यु समय नरेन्द्र को पुनः समाधि की अवस्था प्राप्त कराना आदि कई घटनाएँ हैं जो तर्क–वितर्क, विश्वास–अविश्वास की संभावनाएँ रखती हैं। संतों, महात्माओं, साधकों, सिद्धों का व्यक्तिगत जीवन ऐसी घटनाओं से

भरा होता है। ऐसी घटनाएँ आम आदमी के लिए कम महत्व की होनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक 'ह्वाट रेलिजन इज' धर्म क्या है की प्रस्तावना में क्रिटोफर आईसर वुड ने ठीक ही लिखा है कि विवेकानन्द का व्यक्तित्व, साहस, आध्यात्मिक आधिपत्य, समस्त सौंदर्य उनके लेखन एवं दूसरों के द्वारा उनके शब्दों के टंकन के माध्यम से संसार के सामने प्रस्तुत होता है, जो महत्वपूर्ण है।

विवेकानन्द अपने चौदह अन्य साथियों के साथ दक्षिणेश्वर एवं कलकत्ता के बीच बरानपुर के एक खण्डहरनुमा घर में परमहंस जी के अस्थिकलश को स्थापित कर रहने लगे। इनके पास मात्र दो–दो वस्त्र एवं सोने–बिछाने के लिए चटाईया थी। दैन्य की स्थित थी। भोजन में उबला चावल या भात–नमक और कभी–कभी बेस्वाद पेड़ों की कुछ पत्तियाँ थीं। अस्थिकलश की पूजा करने, साधना, प्रार्थना, आपस में हंसी–मजाक, मौज–मस्ती में समय व्यतीत होने लगा। इनके पास कुछ नहीं था। अभाव की कोई अनुभूति भी नहीं थी। इन्होंने सांसारिक सुख–सुविधा का पूरी तरह परित्याग कर दिया था। परमहंस जी ने मृत्यु से कुछ पहले गृह त्यागी युवा शिष्यों का दायित्व विवेकानन्द को सौंप दिया था इसलिए इन फाक–मस्तों के वे अगुआ या प्रधान हो गये। ये लोग अपने को स्वामी कहने लगे। अब नरेन्द्र, स्वामी विवेकानन्द कहलाने लगे। सभी लोग अध्यात्म का प्रचार एवं विभिन्न धर्मस्थलों एवं तीर्थों के दर्शनार्थ 1880 के प्रारम्भ में विभिन्न दिशाओं में निकल पड़े।

सन्यास व्रत के नियमानुकूल स्वामी विवेकानन्द का किसी पेड़ के नीचे रात्रि विश्राम कर लेना, कड़ी धूप में किसी पेड़ के नीचे विश्राम कर लेना, भोजन किसी से मांगना नहीं, अगर कोई भोजन करा देता तो अच्छी बात, के नियम का पालन करते हुए भारत के गाँवों में अशिक्षा, गरीबी, फटेहाली, अज्ञान लोगों की आँखों से जड़ता एवं नैराश्य के भाव को देखकर भाव विह्वल हो उठे। भारत वेदान्त या अद्वैत दर्शन का प्रणेता रहा है, आज जातियों में विभक्त, छुआ–छूत, दैन्य एवं नैराश्य का पनाहगार बनकर रह गया है। उन्हें यह स्पष्ट हो गया था कि अशिक्षा, अज्ञान एवं गरीबी इस दुर्दशा के कारण हैं। भारत भ्रमण के क्रम में स्वामी विवेकानन्द केप केमरन पहुँचे। इनके मन में एक स्पष्ट भाव आया कि विकसित पश्चिमी जगत को आध्यात्मिकता का संदेश देना भारत का दायित्व है। लेकिन भारत की बात तभी गम्भीरत से सुनी जाएगी, जब इसके पास शक्ति होगी। इसी लिए विद्यालयों एवं अस्पतालों को खोला जाना जरूरी है। साथ ही इन कार्यों के लिए योग्य व्यक्तियों की जरूरत को भी पूरा करना होगा। विवेकानन्द ने निश्चय किया कि आध्यात्मिक प्रचार के लिए वे अमेरिका जायेंगें और धन जुटायेंगे। विवेकानन्द को आध्यात्मिक गुरू परमहंस जी मिल चुके थे और वह कार्य भी स्पष्ट हो चुका था जिसमें शरीर और आत्मा को लगाना था। यह भी स्पष्ट है कि अब तक शिकागो विश्वधर्म महासभा की जानकारी उन्हें नहीं मिली थी। भारत भ्रमण के क्रम में ही उन्हें जानकारी मिली कि जुलाई 1893 में अमेरिका के शिकागो में विश्व धर्म महासभा होगी। महाराजा मैसूर तथा महाराजा खेतड़ी ने इस धर्म महासभा में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करने के साथ–साथ आवश्यक धन की व्यवस्था भी कर दी।

मई 1893 में बम्बई से समुद्री जहाज से उनकी यात्रा अमेरिका के लिए प्रारम्भ हुई जो हांगकांग, जापान होते हुए बैंकुवर समाप्त हुई। उनके पास पैसा समाप्त होने को था और महासभा जुलाई से बढ़कर अब सितम्बर में निर्धारित हो गई थी। शिकागो को महंगा शहर बताते हुए लोगों ने सस्ता शहर बोस्टन में जाकर रहने के लिए परामर्श दिया। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने बोस्टन में जाकर समय व्यतीत करने का निश्चय किया। बोस्टन में इनका पहनावा और भारत के संदर्भ में भद्दे और सतही सवालों से उन्हें क्षोभ और निराशा होने लगी। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के ग्रीक भाषा के प्रोफेसर रिट (Wright) ने रेल टिकट खरीद कर देते हुए शिकागो लौट जाने का परामर्श दिया। स्वामी जी के द्वारा अर्थाभाव एवं सम्मेलन में भाग लेने के लिए परिचय–पत्र न होने की समस्या पर एक पत्र देते हुए कहा कि वहाँ आपके अपने रहने की व्यवस्था हो जायेगी और जहाँ तक परिचय–पत्र न होने की बात है तो भला सूर्य से कोई यह पूछता है कि क्या उसे चमकने का अधिकार प्राप्त है?साथ ही प्रोफेसर रिट ने उन्हें आश्वस्त किया कि शिकागो में उन्हें कोई असुविधा नहीं होगी। स्वामी विवेकानन्द को शिकागो रेलवे स्टेशन पर रात में ठंढक से प्राण रक्षा हेतु कार्टून में छिपकर रहना पड़ा। सुबह ज्ञात हुआ कि प्रोफेसर रिट का पत्र भी कहीं खो गया था। फिर समस्या खड़ी हुई कि कहाँ जाएँ। कई आलिशान बंगलों का दरवाजा खटखटाया। कहीं से कोई आवाज नहीं आई। थककर एक गली के एक किनारे बैठ गये। सुबह शेव नहीं किया था। वस्त्र तुडा–मुडा था। तमाम प्रतिकूलताओं के बाद भी चेहरे की आभा में कोई कमी नहीं थी। सामने से श्रीमती जॉर्ज डब्ल्यू हेल नामक महिला अपने घर से बाहर आकर उन्हें अन्दर ले गई। साफ–सफाई के बाद उन्हें नाश्ता कराकर धर्म महासभा के कार्यालय तक पहुँचा दिया। धर्मसभा वालो ने इन्हें श्री एवं श्रीमती लियान के घर पहुँचा दिया

क्योंकि ये उन लोगों में से थे, जिन्होंने इस कार्य के लिए पहले से ही अपनी सहमति दे रखी थी। लियोन दम्पति बहुत ही भद्र, शालीन एवं उदार थे। इससे पहले इन्होंने कभी किसी हिन्दू को नहीं देखा था। श्रीमती लियोन इनकी सुख–सुविधा का एक माँ के समान ख्याल रखती थीं। इनके लिए एक ओवर कोट की व्यवस्था करायी गई। स्वामी विवेकानन्द एक पुस्तकालय से प्रतिदिन दो किताबें लेने लगे और पूरे दिन पढ़कर उन्हें लौटाने लगे। अधिकांश किताबें दर्शन की होती थीं। पुस्तकालयाध्यक्ष के इस प्रश्न पर कि जब पढ़ना नहीं है तो किताबें ले क्यों जाते हैं?विवेकानन्द किताब पुस्तकालयाध्यक्ष को देकर अक्षरशः उसे बोलने लगने से आश्चर्यचकित होकर उसने क्षमा माँगी थी। धर्म, दर्शन, इतिहास पर इनके व्याख्यानों के आयोजन होने लगे। इसके बदले में इन्हें पैसे मिलने लगे। इन पैसों को लाकर श्रीमती लियोन को रखने के लिए देते थे। इस समय उनके चेहरे की प्रसन्नता एवं सहजता उस छोटे बालक के समान होती थी जो कहीं से प्राप्त पैसे को माँ के आँचल में डालते समय होती है। विवेकानन्द श्रीमती लियोन को अमेरिकी माँ कहते थे।

शिकागों में ऐतिहासिक विश्व धर्म महासभा या 'पार्लियामेन्ट ऑफ रिलिजन्न्स' की अवधारणा पाँच साल पहले तय हुई थी। कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज के चार सौवीं वर्षगांठ पर पश्चिमी जगत के लोगों के द्वारा विज्ञान एवं तकनीकी विकास के द्वारा अर्जित भौतिक उत्थान को संसार को सगर्व प्रदर्शित करना था। बाद में समग्र प्रगति से संबंधित विभिन्न विषयों जैसे महिलाओं की प्रगति, प्रेस, सरकार एवं कानूनों में संशोधन, दवा, शल्य चिकित्सा, अर्थशास्त्र, वाणिज्य आदि में प्रगति को प्रदर्शित करने हेतु अलग–अलग सभाओं को आयोजित करना तय हुआ। धर्म महासभा में विश्व के सभी धर्मो के प्रतिनिधियों को बुलाने पर धर्माधिकारियों में मतभेद हो गया। कैथोलिक चर्च के सर्वप्रधान धर्मगुरू का मत था कि ईसाई धर्म के बराबर दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिए सबको नहीं बुलाया जाना चाहिए। कई चर्चो के विरोध के बाद भी अमेरिकी चर्चो के नेता कार्डिनल गिब्बसन्स द्वारा अध्यक्षता स्वीकार करने की अनुमति के साथ अन्ततः 11 सितम्बर, 1983 को विश्वधर्म महासभा प्रारम्भ हुई। स्वामी विवेकानन्द को हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने की अनुमति मिली। मंचासीन प्रतिनिधियों में स्वामी विवेकानन्द सबके आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बन गए थे। सबसे कम उम्र, गैरिक वस्त्र, माथे पर पीली पगड़ी, उन्नत ललाट, लम्बी नाक, चमकती आँखें, चेहरे की आभा, आत्मप्रसन्न मुद्रा सब मिलाकर लगता था कि यह धातु की कोई मूर्ति है। कभी–कभी साधु–सन्यासी कम राजकुमार अधिक प्रतीत होते थें सभी प्रतिनिधि बारी–बारी से अपना लिखित भाषण लाये थे और पढ़ते थे। स्वामी विवेकानन्द के पास न तो कोई लिखित भाषण था और न तो उनकी आदत थी। उनका व्याख्यान हमेशा परिस्थितिजन्य अर्थात् समय कैसा है, श्रोता कैसे हैं, तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं समस्याएँ कैसी हैं, होता था। सभी प्रतिनिधियों ने अपने–अपने धर्मो की श्रेष्ठता की बात की थी। जब स्वामी जी की बारी आई तो इन्होंने अमेरिकी बहनों एवं भाईयों के संबोधन के साथ अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया। इस संबोधन पर ही पूरा सभागार पैरो पर खड़े सहभागियों की तालियों की गड़गड़ाहट एवं हर्षोल्लास से दो मिनट तक गुंजता रहा। तालियों की गड़गड़ाहट जब समाप्त हुई तो स्वामी जी एक धर्म के प्रतिनिधि मात्र के रूप में ही नहीं वरन् अध्यात्मिक सत्य की सार्वभौमिकता को अपने व्याख्यान की प्रस्तावना के रूप में प्रस्तुत करने लगे। उस दिन सभा समय पर समाप्त हो गई। स्वामी जी से पहले सभागार में बैठे लोगों ने अपने जीवन में न तो यह संबोधन सुना था और न ही इन शब्दों भाईयों एवं बहनों का अर्थ समझा था जो सात समुद्र पार के इस सन्यासी ने आज समझा दिया। सबने महसूस किया कि यह सन्यासी अन्तरात्मा से महिलाओं को अपना बहन मानता है और पुरूषों को अपना भाई। इसका अन्तर्मन एवं बाह्य दोनों एक हैं। विवेकानन्द को नजदीक से देखने एवं उन्हें स्पर्श करने के लिए विलासिता में आकंठ डूबी महिलाओं को देखकर एक महिला ने कहा कि मेरे बच्चे यदि तुम इनके प्रहार को नाकाम कर देते हो तो तुम सचमुच में भगवान हो। 12 सितम्बर को अमेरिका सहित आधी दुनिया के अखबारों में स्वामी जी का चित्र उनके भाषण के साथ छप गया। कल तक का अनजान युवा भारतीय सन्यासी आज विश्वविख्यात हो गया।

स्वामी विवेकानन्द ने एक तरफ भारत में दैन्य एवं नैराश्य के भाव को तो दूसरी तरफ पश्चिमी जगत के विज्ञान एवं तकनीक के विकास से अर्जित समृद्धि एवं अहंकार को देखा था। धर्म महासभा में जब पुनः उनको अवसर मिला तो स्पष्ट किया कि सभी धर्मो का जन्म विश्व के भिन्न–भिन्न भागों में भिन्न–भिन्न समयों में हुआ है। लेकिन सबका उद्देश्य एक ही है– सत्य की खोज। सत्य एक ही होता है– परम सुख–शांति। परम सुख और शांति अधिकाधिक वस्तुओं की उपलब्धता से नहीं, वरन् अध्यात्म से मिलती है। इसलिए सार्वभौम अध्यात्म ही सभी धर्मो का मूल है। सभी धर्मो का जन्म भिन्न–भिन्न भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में हुआ है और इनके कर्म–काण्ड पूजा विधि

अलग–अलग दिखलाई पड़ते हैं लेकिन इनकी आत्मा एक है। मैं भारत का एक हिन्दू सन्यासी हूँ। आप भारत को सपेरों एवं नदी, पहाड़ों, वृक्षों को पूजने वाले असभ्यों का देश कहते हैं। हमें सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए ईसाई मिशनरियों को धर्म प्रचार के लिए भेजते हैं। लेकिन हमारा धर्म कण–कण में ईश्वर का दर्शन कराया है। विश्व का प्राचीनतम हमारा वेदान्त दर्शन आपके धर्म के जन्म के पहले से ही हमें पूरे विश्व को कुटुम्ब बनाने का पाठ पढ़ा रहा है। हमारे यहाँ धर्म की कमी नहीं है। धर्म प्रचार पर पैसा खर्च करने के बदले शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के विकास के लिए खर्च करे तो यह श्रेयस्कर होगा। मैं किसी को हिन्दू बनाना नहीं चाहूँगा। आपको अच्छा ईसाई, अच्छा मुसलमान, अच्छा आदमी बनाना चाहूँगा। स्वामी जी ने सभागार में बैठे लोगों को ही नहीं वरन् विकसित एवं स्वतंत्र प्रिंट के माध्यम से अमेरिका सहित विश्व भर के प्रबुद्ध एवं बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया। इस ऐतिहासिक विश्व धर्म महासभा के माध्यम से स्वामी जी ने भारत की प्राचीनतम आध्यात्मिक विरासत से विश्व का साक्षात्कार करा दिया।

स्वामी जी जुलाई 1893 से जनवरी 1897 के मध्य तक अमेरिका एवं यूरोप के विभिन्न देशों के बीच वेदान्त एवं अद्वैतवाद की शिक्षा देते रहे। इनके व्याख्यानों के श्रोताओं में उस समय के कई वैज्ञानिक, गायक, अनिश्वरवादी भी थे। अपने शिष्यों के आग्रह पर दिसम्बर 1895 में न्यूयार्क में पहला वेदान्त सोसायटी की स्थापना किया। हार्वर्ड तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालयों से इस्टर्न फिलासफी पीठ के अध्यक्ष पद पर नियुक्ति के लिए प्रस्ताव आने पर इन्होंने यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि एक घुमंतू सन्यासी के लिए एक जगह स्थिर रहना सम्भव नहीं है। जनवरी 1897 के मध्य में सीलोन होते हुए कलकत्ता आ गये जहाँ इनका भव्य स्वागत हुआ। एक मई 1897 को बेलूर में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसने दुर्भिक्ष एवं प्लेग आने पर प्रशंसनीय कार्य किया। मिशन के द्वारा स्कूल एवं अस्पताल प्रारम्भ किए गए। स्वामी ब्रह्मानन्द मिशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए जिन्हें स्वामी जी ने पश्चिम जगत में व्याख्यानों से प्राप्त धन को सौंप दिया। पुनः जून 1899 में दूसरी बार इन्होंने पश्चिम जगत की यात्रा की। इस यात्रा में उनकी इच्छानुसार अमेरिका, इंगलैण्ड, अर्जेटिना में वेदान्त केन्द्र स्थापित किए गए। अस्वस्थता के कारण इस बार अधिक समय तक नहीं रूक सके थे। स्वास्थ्य अच्छा हो रहा था। गुरूभाई एवं शिष्य प्रसन्न थे। अचानक 4 जुलाई 1902 को अगाध निद्रा–अंतिम समाधि में प्रवेश कर गए। चेहरे पर कोई पीड़ा, दैन्य, उदासी

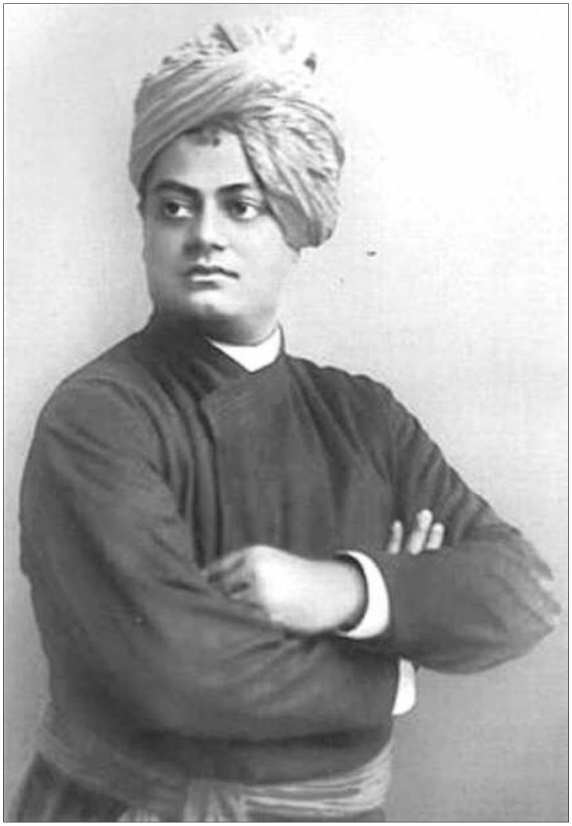

नहीं वरन् पूर्ण संतुष्टि का भाव था। गांधीजी ने स्वीकार किया है विवेकानन्द की रचनाओं से उन्हें अन्तर्मन से राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा मिली है।

विवेकानन्द का स्पष्ट मत था कि एक भूखे व्यक्ति के लिए धर्म का कोई महत्व नहीं है। गरीबी दूर करने एवं खुशहाली लाने के लिए विज्ञान एवं तकनीक का महत्व है। लेकिन अध्यात्म विहीन समृद्धि, शांति नहीं प्रदान कर सकती हैं। विवेकानन्द पूरबी एवं पश्चिमी जगत् के बीच तटस्थ होकर खड़े थे। दोनों की अच्छाईयों की प्रशंसा एवं बुराईयों की आलोचना की थी। विवेकानन्द ने पश्चिमी जगत् से जो थोड़ा–सा धन इकट्ठा किया था या कुछ शिष्यों को बनाया था यह मात्र प्रतीकात्मक था। सबसे बड़ी बात कि पश्चिमी जगत को स्वाभिमान के साथ कुछ देने और कुछ मांगने, कुछ सिखाने और कुछ सिखने तथा एक तरह से सबके साथ एक धरातल पर दिखने और दिखाने का संवाद विकसित किया, यह महत्वपूर्ण है। स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व प्राचीनता एवं आधुनिकता का मानव कल्याणार्थ समग्र योग है जो युवाओं के लिए सदा प्रेरणास्त्रोत के रूप में कार्य करेगा।

भारतीय दर्शन का
भावी स्वरूप

डॉ० सन्तोष कुमार सिंह

विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
अनजवित सिंह कॉलेज, बिक्रमगंज (रोहतास)

दर्शन की परिभाषा तथा कार्यक्षेत्र के निर्धारण के व्यामोह में पड़े बिना भी हम यह निर्णय ले सकते हैं कि दर्शन का मूल सरोकार मनुष्य ही है। यदि दर्शन मनुष्य और समग्र मानव जाति का हित–चिंतन नहीं कर सकता तो समस्त दार्शनिक चिंतन अंधकूप में विसर्जित कर देने योग्य है। यदि दार्शनिक मानव–हित–साधना नहीं कर सकता तो उसकी समस्त साधना सर्वथा परिहार्य है। इससे बढ़कर निरर्थक और कुछ नहीं जो मानवोपयोगी न हो।

भारतीय दर्शन का एकमात्र ध्येय मानवीय दुःखों, कष्टों तथा समस्याओं का निदान कर मानव को पूर्ण बनाना है। भारतीय दर्शन की रूचि मानव–समुदाय में है, किसी काल्पनिक एकान्त में नहीं। इसका उद्भव जीवन में से होता है तथा विभिन्न शाखाओं और सम्प्रदायों से होकर यह पुनः जीवन में प्रवेश करता है। भारतीय दर्शन के संबंध में डॉ० राधाकृष्णन का यह कथन प्रमाणित करता है कि यहाँ दर्शन जीवन से जुड़ा रहा है। जीवन से जुड़े होने का तात्पर्य जीवन की समस्याओं पर विचार करना तथा उन्हें दूर करने के विकल्पों की तलाश करना है। भारतीय दार्शनिकों ने जीवन की समस्याओं का सूक्ष्मता, समग्रता तथा गहनता से अध्ययन करते हुए उनके समाधान के दार्शनिक सूत्र खोजे हैं। चूँकि जीवन देश–काल से बंधा होता है इसलिए उसकी समस्यायें भी देश–काल निरपेक्ष नहीं होती और उसका निराकरण भी देश–काल सापेक्ष ही हो सकता है। प्राचीन काल के दार्शनिकों ने इसका ख्याल रखा था तथा भविष्य कालीन भारतीय दर्शन का स्वरूप तय करते हुए भी इसका ख्याल रखना पड़ेगा। यह कार्य परम्परागत स्थितियों के विश्लेषण तथा वर्त्तमान परिदृश्य के पड़ताल के समन्वित चिंतन से संभव हो सकता है।

पारंपरिक स्थितिः– भारत में ''दर्शन'' शब्द की उत्पति ''दृश'' धातु से हुई है जिसके अनुसार दर्शन देखने की प्रणाली है। यद्यपि सामान्य अर्थ में इस प्रणाली के द्वारा स्थूल तत्व को देखने की बात होती है परन्तु विशेष अर्थ में यह परमतत्व को देखने की प्रणाली है। इस प्रकार दर्शन परमतत्व का साक्षात्कार है।

परमतत्व को लेकर भारतीय दर्शन का स्वरूप मूलतः आध्यात्मिक रहा है। भारतीय संस्कृति में अध्यात्म का स्थान सर्वोच्च रहा है तथा दर्शन आत्मज्ञान का साधन। डॉ० राधाकृष्णन इसपर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं ''भारतीय विचारधारा का सर्वोपरि स्वरूप जिसने इसकी समग्र संस्कृति को ओत–प्रोत कर रखा है और जिसने इसके सभी चिंतकों को एक विशेष प्रकार का ढ़ाँचा प्रदान किया है इसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। इसी प्रवृत्ति के कारण 'अध्यात्मवाद' भारतीय दर्शन की मुख्य धारा में स्थापित हो सका है।

यद्यपि भारतीय दार्शनिक परम्परा में भौतिकवाद का भी स्थान है परन्तु अति–प्राचीन होने के बावजूद यह यहाँ की मुख्य धारा कभी नहीं रही। परम्परा में इसका एकमात्र उदाहरण केवल चार्वाक दर्शन है। राधाकृष्णन अपनी पुस्तक ''भारतीय दर्शन'' में भौतिकवादी धारा की

प्राचीनता की चर्चा करते हुए इसके अन्तर्गत केवल चार्वाक दर्शन का ही उल्लेख करते हैं। एस०एन० दासगुप्ता ने भी ''भारतीय दर्शन का इतिहास'' लिखते हुए तीसरे खण्ड के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत लोकायत, चार्वाक और वार्हस्पत्य नाम से प्रसिद्धः जो एक ही दर्शन के नाम हैः भौतिकवादी दर्शन के अत्यन्त प्राचीन होने की संभावना व्यक्त करते हैं। परन्तु यह भारतीय दर्शन की मुख्य धारा है ऐसा नहीं कहते।

यद्यपि इस अध्यात्मवाद के कारण भारतीय समाज में अनेकों प्रकार की विसंगतियाँ पैदा हुईं। ये विसंगतियाँ अध्यात्मवादी तत्वमीमांसा की ज्ञानमीमांसीय स्थापना तथा नीतिमीमांसीय निष्पत्ति के दुरूपयोग के कारण पैदा हुई। अध्यात्मवाद मूल तत्व को ब्रह्म कहता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि ब्रह्म का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा नहीं हो सकता क्योंकि वह इन्द्रियातीत है। फिर उसे बुद्धि के द्वारा भी नहीं जाना जा सकता, क्योंकि वह बुद्धि के परे हैं। उसे एकमात्र जानने का उपाय अंतर्ज्ञान है। यह अपरोक्ष ज्ञान (Direct Knowledge) है जिसमें ब्रह्म किसी माध्यम के द्वारा नहीं जाना जाकर साक्षात् जाना जाता है। शंकर इसी ज्ञान को मोक्ष कहते हैं।

अब इन आत्मा, ब्रह्म, मोक्ष तथा अंतर्ज्ञान आदि अवधारणाओं के कारण पंडित–पुरोहितों का ऐसा वर्ग पैदा हुआ जो इन सबका व्यापार करने लगा। इस वर्ग के लोगों को आत्मा, ब्रह्म, मोक्ष का कोई अनुभव नहीं था फिर भी इसकी दावेदारी आरम्भ कर दी। वे स्वयं को श्रेष्ठ समझ जनता का तिरस्कार करने लगे। समाज में छुआछूत तथा पाखण्ड पैदा हुआ। वह वर्ग स्वर्ग का लोभ तथा नरक का भय दिखलाकर आर्थिक शोषण करने लगा। इस शोषण के लिए उसने कर्मकाण्ड का जटिल तंत्र भी पैदा किया तथा यह कहने लगा कि इन कर्मकाण्डों के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अब चूँकि जिस ज्ञान की दावेदारी पंडित–पुरोहित कर रहे थे उसे इन्द्रियों द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता था। अतः भोली–भाली जनता उस पर विश्वास करने लगी। इस प्रकार समाज षड़यंत्र का शिकार हो गया।

समाज को इस षड़यंत्र से मुक्त कराने का कार्य भौतिकवादी दर्शन ने किया। मुख्यधारा के नाम पर फैली रूढ़ियों तथा कुरीतियों का पूरजोर विरोध किया। समाज में जो अंधविश्वास तथा पाखण्ड फैलाया गया था उसकी भौतिकवादियों ने कटु आलोचना करनी प्रारम्भ की। ठगने तथा शोषण करने वाले पंडित–पुरोहितों को चार्वाक ने भाड़–निशाचर तक कहा तथा आम जनता को उनके षड़यंत्र से बचने को कहा। परिणामस्वरूप अध्यात्म के नाम पर फल–फूल रहे शोषण तथा पाखण्ड के व्यापार को चुनौती मिलने लगी। पंडित–पुरोहितों का विरोध किया जाने लगा। लोग ऐसे ही किसी की बातों पर विश्वास न करके उसे तर्क–वितर्क की कसौटी पर कसने लगे। जो खरा उतरता उसे स्वीकारते जो न उतरता उसे न स्वीकारते। इससे शोषण तंत्र कमजोर हुआ तथा समाज मे ंव्याप्त अंधविश्वास में कमी आई।

यह भौतिकवाद का समााज के लिए एक बड़ा योगदान था। यह भारतीय दर्शन की पारम्परिक स्थिति है। जिसकी नींव पर उसका भावी स्वरूप निर्धारित करना होगा। परन्तु भावी स्वरूप के निर्धारण में वर्त्तमान परिदृश्य की भी पड़ताल करनी होगी जिसकी शुरूआत समकालीन भारतीय दर्शन से की जा सकती है। भारतीय दर्शन को अपनी परम्परा में सदैव ही निष्ठा रहे है। यह इसका विशिष्ट गुण है। राधाकृष्णन के अनुसार ''भूतकाल के प्रति इस प्रकार की निष्ठा ने भारतीय विचार में एक प्रकार के नैरन्तर्य को उत्पन्न किया है ....।'' इसी नैरन्तर्य के कारण समकालीन भारतीय दर्शन भी अपनी परम्परा से प्रेरणा लेते हुए मुख्यतः अध्यात्मवादी ही रहा। इस काल के दार्शनिकों द्वारा विशेष कर वेदान्त की अवधारणाओं को नये ढंग से परिभाषित तथा व्याख्यायित करने के कारण इस काल के अध्यात्मवाद को नव्य वेदान्तवाद कहा गया। रामकृष्ण, परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, डॉ० राधाकृष्णन, महर्षि रमण तथा महर्षि अरविन्द आदि इस युग के सभी दार्शनिक नव्य–वेदान्तवादी ही थे जिनके विचारों में अध्यात्मवाद नये ढंग से स्थापित होता है। डॉ० श्रीमती लक्ष्मी सक्सेना कहती है कि विश्व के आध्यात्मिक पक्ष की परमता पर बल देना और जगत के प्रति एक स्वस्थ भावात्मक दृष्टिकोण विकसित करने की महत्ता का प्रतिपादन करना इस युग के सभी अध्यात्मवादी दार्शनिकों की विशेषता है।

परन्तु यह युग भारत की राजनीतिक गुलामी का था। इसपर अंग्रेजों का शासन था। प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सभी तरीकों से वे यहाँ के दर्शन को हीन तथा अपने दर्शन को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे। इसी प्रयास में पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन–अध्यापन यहाँ प्रारम्भ हुआ। यहाँ के दार्शनिक पाश्चात्य दर्शन के प्रति आकृष्ट हुए। इनमें कई दार्शनिकों ने भारतीय दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध करने को पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन किया ताकि पाश्चात्य दार्शनिकों को उन्हीं की शैली एवं शर्तो पर जबाव दिया जा सके तो कई पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित होकर उनके अध्ययन में तत्पर हुए। फलतः पाश्चात्य विचार धाराओं का व्यापक प्रभाव भारतीय दर्शन पर पड़ा। भारतीय दर्शन का वर्तमान परिदृश्य इन सबसे गहरे प्रभाव में निर्मित हुआ।

इस निर्माण में विज्ञान ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उसके नये–नये आविष्कारों ने मनुष्य को चमत्कृत

कर दिया है। फलतः दर्शन को विज्ञान पर आधारित करने का प्रयास किया जाने लगा। इस प्रयास ने तत्वमीमांसा का निराकरण कर उसकी अवधारणाओं को निरर्थक घोषित कर दिया। अब चूँकि इसका गहरा प्रभाव भारतीय दर्शन पर पड़ा, इसलिए इसकी वजह से भारतीय दर्शन के आध्यात्मिक स्वरूप को गहरा धक्का लगा। इन सबके कारण भारतीय दर्शन में तब्दीली आई जिसे संगम लाल पाण्डेय स्वातंत्र्योत्तर युग की विशेषता कहते है। उनके अनुसार स्वातंत्रोत्तर युग की चार प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं– ''मूल्यवाद, भाषा–विश्लेषण, अनुभववाद और साम्यवादी भौतिकवाद।'' यह भारतीय दर्शन के वर्त्तमान परिदृश्य की पृष्टभूमि है।

वर्त्तमान परिदृश्यः– इस पृष्टभूमि से उपजे वर्त्तमान परिदृश्य में यह स्पष्ट दृष्टिगत होता है कि यद्यपि इस भौतिकवाद, प्रत्यक्षवाद, विज्ञान आदि के कारण भारतीय समाज की रूढ़ियाँ टूटी, कई प्रकार के पाखण्ड खत्म हुए, अध्यात्मवाद के नाम पर फैले अंधविश्वास में कमी आई तथा शोषण का तंत्र कमजोर हुआ। लेकिन इसके बदले समाज में दूसरे तरह की विकृतियाँ फैल गई। जनता के शोषण का नया तंत्र स्थापित हो गया। यह पहले से ज्यादा मजबूत तथा मोहक है। ऐसा एक अति से दूसरे अति पर जाने की वजह से हुआ। भौतिकवादी चिंतक अध्यात्मवाद के दुरूपयोग करने वाले कारणों पर प्रहार करने के वजाय अध्यात्मवादी दर्शन पर ही प्रहार करने लगे। उनके लिए अंतर्ज्ञान, आत्म–साक्षात्कार, मोक्ष आदि तत्व बेमानी हो गये। इन्हें काल्पनिक, असत्य तथा अयर्थाथ घोषित कर दिया गया। सत्य तथा यर्थाथ केवल भौतिक वस्तुएँ रह गयी। वे वस्तुयें जो विज्ञान की कसौटी, इन्द्रिय और बुद्धि पर खरी उतरती हों। इस घोषणा से यह शरीर, यह संसार और यहाँ के भौतिक सुखद जीवन के अंतिम लक्ष्य हो गये। इस प्रकार भौतिकवादियों के लिए अध्यात्मवादी दर्शन के चार पुरुषार्थों में से धर्म तथा मोक्ष की कोई महत्ता नहीं रह गई। महत्ता केवल अर्थ और काम की रही।

भौतिकवादियों की इस स्थापना के कारण ही आज का समाज अर्थ–केन्द्रित हो गया है। आज का साम्राज्यवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, आतंकवाद आदि विकृत्तियाँ इसी सैद्धान्तिक स्थापना की व्यावहारिक परिणति हैं। राष्ट्र के युद्ध और व्यक्तियों की प्रतिस्पर्धा के मूल में भी यह अर्थ ही है। इसीलिए आज के प्रसिद्ध समाजवादी चिंतक सच्चिदानन्द सिन्हा कहते हैं– ''बीसवीं सदी की तरह इक्कसवीं सदी में दुनिया का सबसे बड़ा अनिष्ट जिस शास्त्र से होने की संभावना है वह अर्थशास्त्र जो दरअसल शास्त्रों की बुनियादी मान्यता के हिसाब से कोई शास्त्र है ही नहीं।''

भौतिकवाद के दुष्परिणामों को और गहन तथा प्रभावकारी बनाने का काम विज्ञान ने किया। अपनी खोजों के द्वारा इसने भौतिक समृद्धियों के तो पहाड़ खड़े कर दिये परन्तु आत्मिक बोध के लिए राई भर आकाश नहीं छोड़ा। उसने प्रकृति पर जीत हासिल करने के उन्माद में पर्यावरण का ऐसा संकट पैदा कर दिया है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि के नष्ट होने के आसार उत्पन्न हो गये हैं। उसने शस्त्रों का ऐसा जखीरा पैदा कर दिया है जो इस पृथ्वी को कई बार नष्ट कर सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भौतिकवादी चिन्तन और विज्ञान ने मिलकर ऐसा दर्शन प्रतिपादित कर लिया है जिससे वर्त्तमान समय के संकट के सारे तार जुड़े हैं। वैयक्तिक द्वेष, सामाजिक हिंसा, राष्ट्रीय युद्ध, वैश्विक विनाश, स्वार्थवाद, विज्ञापनवाद, भूमंडलवाद, प्रभुत्ववाद, धन–लोलुपता, सत्ताकांक्षा आदि जितनी समस्यायें हैं उन सबकी जड़ में यही दर्शन है। यह हमारा वर्त्तमान परिदृश्य है। इसकी विद्रूपता को दर्शन के द्वारा ही बदला जा सकता है। इसलिए भारतीय दर्शन का भावी स्वरूप सुनिश्चित करते हुए इसका ध्यान रखना पड़ेगा कि एक ऐसे दर्शन का नक्शा खींचा जाये जो अध्यात्मवाद तथा भौतिकवाद दोनों की खामियों से मुक्त तथा दोनों की खूबियों से युक्त हो, ताकि व्यक्ति, समाज, देश और दुनिया किसी भी प्रकार के शोषण एवं विक्षिप्तताओं से बचा रह सके। भावी स्वरूपः इसके सूत्र अध्यात्मवादी दर्शन से ही तलाशने होंगे। पाश्चात्य जीवन और समाज भारतीय जीवन और समाज से भिन्न हैं। इसलिए वहाँ का दर्शन वहाँ की समस्याओं का समाधान कर सकता है, यहाँ का नहीं। यहाँ की समस्याओं के समाधान के लिए, यहाँ के दर्शन को, यहाँ की परम्परा और संस्कृति से ऐसे सूत्र ढूँढ़ने होंगे जो यहाँ के समाज और परिवेश के अनुकूल हों। यह सूत्र अध्यात्मवाद में मिल सकता है।

इसके अतिरिक्त अध्यात्मवाद ही वह दर्शन है, जो मूल सत्ता को आध्यात्मिक, अंतर्ज्ञान को ज्ञान मानता है।

इस प्रकार यह स्थापित होता है कि अध्यात्मवादी दर्शन के द्वारा ही व्यक्ति, समाज, विश्व और प्रकृति सबका हित संभव हो सकता है। हमें आत्मबोध से परिपूर्ण व्यक्तियों का ऐसा समाज विकसित करना होगा जिसका अभीष्ट निपट भौतिकता न हो। तभी समाज शोषण, पाखण्ड, अंधविश्वास तथा भ्रष्टाचार जैसे दुर्गुणों से मुक्त होगा। अभी जो दुनिया है वह बेहद असहज, अशांत, अराजक तथा अस्थिर है। वास्तव में यह आत्मघात के मुहाने पर खड़ी है। भारतीय दर्शन का भावी स्वरूप, यदि ऐसा हो सकता तो, वह दुनिया के आत्मघात से बचा सकता है। इस देश को विश्व–गुरु होने का गौरव प्राप्त रहा है। अपने दर्शन के इस भावी स्वरूप के द्वारा वह उस खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त कर सकता है।●

खाद्य सुरक्षा:
वर्त्तमान परिदृश्य एवं भावी चुनौतियाँ

डॉ० के० राय

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर, अर्थशास्त्र विभाग
ए.एस. कॉलेज, बिक्रमगंज

आज जबकि पूरी दुनिया उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की दुधिया रोशनी में नहाया हुआ है, विश्व खाद्य सुरक्षा परिदृश्य पर दृष्टिपात करते हैं तो लगता है, पूरी दुनिया में आबादी का एक बड़ा हिस्सा खाद्य सुरक्षा की समस्या से जूझ रहा है और भूख से पीड़ित लोगों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। दुनिया के अल्प विकसित एवं विकासशील कहे जाने वाले देशों में लाखों–करोड़ों लोग समुचित खाद्यान्न खरीद पाने की स्थिति में नहीं हैं और कुपोषण के शिकार होते जा रहे हैं। अब अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य संस्थाएँ स्वयं भी संकट के दौर से गुजर रही हैं। खाद्यान्न उपलब्ध कराने वाली स्वयं सेवी संस्थाओं से भी अतिरिक्त मदद की कोई उम्मीद नहीं दिखती है क्योंकि इन संस्थाओं पर भी संकट के बादल और अधिक गहराते जा रहे हैं।

विश्व खाद्य कार्यक्रम की कार्यकारी निदेशक इरथेरीन कोसीन की माने तो वि.खा.का. को वर्ष 2010–11 में 300 मिलियन डालर की अतिरिक्त खाद्यान आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति नहीं हो पायी थी। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2007 के बाद से खाद्य मूल्यों में 40 से 55 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और भूख से पीड़ित लोगों की संख्या भी बढ़ी है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार इन दिनों दुनिया के 37 से ज्यादा देश अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य सहायता पर निर्भर है।

अभी हाल ही में खाद्य एवं कृषि संगठन के महानिदेशक जोश ग्रेजियानों डी शिल्वा ने विश्व खाद्य समस्या पर चर्चा करते हुए आशंका व्यक्त की है कि खाद्यान्न उत्पादन में आ रही कमी और बढ़ते मूल्य से खाद्य संकट और अधिक गहराएगा तथा कई देशों में भोजन के लिए संघर्ष और हिंसक हो सकते हैं। श्री डी शिल्वा के अनुसार इस वक्त दुनिया में अनाज का भण्डार इतना कम है कि यह पूरी दुनिया की आबादी का केवल 8 से 12 सप्ताह तक ही पेट भर सकता है। उन्होंने यह भी संकेत दिया कि केमरून, मिश्र, हैती, बुर्कीनाफासो तथा सेनेगल जैसे देशों में जारी खाद्य संघर्ष दुनिया के अन्य देशों में भी फैल सकते हैं। विशेषज्ञों की राय में खाद्य संकट का सबसे प्रमुख कारण खाद्य पदार्थो के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि ही है। खाद्य विशेषज्ञ अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में मांस की मांग में वृद्धि को एक बड़ा कारण मान रहे हैं। ऐसा माना जा रहा है कि विगत दो वर्षो में मांस की मांग में दोगुना वृद्धि हुई है और आने वाले वर्षो में इसकी मांग में और अधिक वृद्धि होने की संभावना है। जाहिर है मांस की मांग में वृद्धि के अनुपात में चारा उत्पादन का दायरा भी बढ़ा है। इनके मांग की पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में सोयाबीन व अन्य फसलों का उत्पादन किया जा रहा है। अनाज की जगह चारे के उत्पादन का परिणाम है कि कई देशों में खाद्यान्न की कमी होने लगी है।

खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्म–निर्भरता शुरू से ही भारतीय आयोजन का मूल दर्शन रहा है। स्वतंत्रता के बाद के वर्षो में खाद्यान्नों की अत्यधिक कमी के परिणामस्वरूप सरकार की खाद्य नीति का उद्देश्य खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्म–निर्भरता प्राप्त करना था। जैसा कि आर०

राधाकृष्ण ने कहा है, भारत 1970 के दशक में ही खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्म–निर्भरता की स्थिति पा चुका था और इस स्थिति को बनाए रखने में सफल रहा है। सरकार ने काफी बड़ी मात्रा में, भारतीय खाद्य निगम की मदद से, खाद्यान्नों के भण्डार जमा किए हैं और इन भण्डारों में से लोगों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से खाद्यानों की आपूर्ति की जाती है। हाल के वर्षो में तो ये भंडार न्यूनतम मापदण्डों की तुलना में काफी अधिक थे जिससे अतिरिक्त भंडार की समस्या उत्पन्न हो गयी थी। 1 जनवरी, 2010 को सरकार के पास गेहूँ के 23.1 मिलियन टन तथा चावल के 24.4 मिलियन टन के भंडार थे। ये स्टॉक न्यूनतम मापदंडों की तुलना में बहुत अधिक है।

यद्यपि खाद्यानों के अतिरिक्त भण्डारों के कारण स्थिति संतोषजनक दिखाई देती है तथापित चिंता के कुछ कारण अवश्य है। विश्लेषकों के अनुसार जहाँ बढ़ती हुई जनसंख्या तथा बढ़ते हुए आय स्तरों के कारण, गेहूँ के उपभोग में आनेवाले वर्षो (2014–15) में कॉफी वृद्धि (लगभग 90 मिलियन टन) की संभावना है, वहीं गेहूँ के उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि करना संभव नहीं जान पड़ता है न ही चावल के उत्पादन में। जहाँ तक दालों एवं खाद्य–तेलों का सवाल है, भारत पहले से ही इसका काफी मात्रा में आयात कर रहा है।

विश्व भूखमरी सूचकांक 2010 के अनुसार, कुल 84 विकासशील देशों में भारत का 67वाँ स्थान था। चीन का नौवाँ तथा पाकिस्तान का 52वाँ स्थान था। दक्षिण एशिया में बंगला देश ही भारत के नीचे हैं। नेपाल का 56वाँ स्थान था और इस प्रकार वह भी भारत से ऊपर था। श्रीलंका का स्थान 39वाँ था। विश्व खाद्यान्न कार्यक्रम के अनुसार, विश्व के 50 प्रतिशत भूख से ग्रस्त लोग भारत में निवास करते हैं।

भारत की 35 प्रतिशत जनसंख्या (40 करोड़ से अधिक लोग) खाद्य असुरक्षित है। 15 से 49 वर्ष की आयु के बीच की प्रत्येक 10 गर्भवती स्त्रियों में से 9 कुपोषण तथा खून की कमी या रक्तक्षीणता का शिकार हैं। जिन शिशुओं की मृत्यु हो जाती है उनमें से 20 प्रतिशत की मृत्यु का कारण उनकी माताओं की रक्तक्षीणता है। 2006 में 5 वर्ष से कम आयु वाले 46 प्रतिशत बच्चे कुपोषित थे। 2006 में विश्व में 5 वर्ष से कम आयुवाले 97 लाख बच्चों की मृत्यु में 50 प्रतिशत की मृत्यु का कारण कुपोषण है। 2006 के आकड़ों के अनुसार दुनिया में जन्म के समय कम वजन वाले बच्चों में एक तिहाई (1/3) बच्चे भारत के थे। उसमें भी सबसे कम वजन वाले बच्चे मध्यप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, गुजरात, उड़ीसा, छतीसगढ़, मेघालय तथा उत्तरप्रदेश के थे। भारत में हर 4 बच्चों में से 3 बच्चों मे खून की कमी पाई जाती है। भारत में अवरूद्ध विकास वाले बच्चों का प्रतिशत 37 है अर्थात् हर तीन में से एक बच्चा।

आज पूरी दुनिया में विश्व ग्राम की संकल्पना को साकार करने की बात की जा रही है ऐसे में जबकि इन दिनों सहारा के देशों को भयंकर अकाल के दौर से गुजरना पड़ रहा है और लाखों लोग भोजन की तलाश में पड़ोसी व अन्य देशों में पलायन कर रहे हैं वहीं कई देशों में खाने योग्य अनाजों को सड़ाकर समुद्र में फेंक दिया जा रहा है। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार विश्व में प्रति वर्ष 130 करोड़ टन अनाज (भारत के कुल अनाज उत्पादन से लगभग 4 गुना अधिक) नष्ट कर दिया जाता है। रिपोर्ट में बताया गया है कि यदि बर्बादी का आकलन प्रति व्यक्ति के हिसाब से किया जाय तो विकसित देशों में प्रति व्यक्ति बर्बाद खाद्यान्न की मात्रा सबसे अधिक है। उपभोग की प्रक्रिया में वे 95 से लेकर 115 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति वर्ष नष्ट करते हैं। खाद्यान्न की बर्बादी का अर्थ उसके उत्पादन हेतु प्रयुक्त संसाधनों जैसे भूमि, श्रम, पूँजी, ऊर्जा आदि की बर्बादी भी है।

अपने देश भारत में 12वीं (2012–17) योजना की रूपरेखा एवं दृष्टि पत्र को देखकर खाद्य संबंधी मामले में सरकारी महत्वाकांक्षा का पता तो लगता है लेकिन मौजूदा सरकारी मशीनरी की वास्तविकता एवं गहराते स्वास्थ्य संकट तथा जनस्वास्थ्य की बढ़ती चुनौतियों की तुलना में यह उम्मीद करना मुश्किल है कि भारत में सरकार जनस्वास्थ्य एवं खाद्य संकट की चुनौतियों को स्वीकार कर उससे निपटने के लिए कमर कस रही है। हाँ, सरकार ने 12वीं योजना (2012–17) में स्वास्थ्य पर डीजीपी का 2.5 प्रतिशत खर्च करने एवं औसत स्वास्थ्य संकेत के नजदीक पहुँचने की इच्छा रखी है तो यह अच्छी बात है। 12वीं योजना के दृष्टि पत्र में सरकार ने व्यापक स्वास्थ्य सुविधा, व्यापक स्वास्थ्य ढांचा, स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त मानव संसाधन, स्वास्थ्य सेवाओं में जन भागीदारी, बच्चों के पोषण एवं इससे संबंधित कार्यक्रमों को मजबूत करने का संकल्प लिया है। हेल्थ, मेडिसिन एवं इम्पायर नामक पुस्तक के लेखक विश्वमोय पति तथा मार्क हेरिसेन का मानना है कि ''खाद्य संकट एवं कुपोशण को जटिल बनाकर पेश करने के पीछे बहुर्राष्ट्रीय खाद्य कम्पनियों और साम्राज्यवादी ताकतों का एक मात्र उद्देश्य मुनाफा कमाना है और इसके लिए वे नैतिकता और कानून की सारी हदें पार कर सकते हैं।'' बहरहाल वैश्वीकरण के इस थापे गये परिस्थितियों में वैकल्पिक और जनवादी सोच रखने वाले अर्थशास्त्रियों एवं समाज वैज्ञानिकों की जिम्मेदारी है कि वे सकारात्मक विकल्प तलाश की दिशा में सार्थक एवं उपभोगी प्रयास करें ताकि खाद्यान्न सुरक्षा की समस्या से निजात पाये और इसके भंयकर दुष्प्रभावों से बचाकर मानवता की सेवा की जा सके। ●

विनयशीलता
धर्म की आत्मा

अरुण कुमार सिंह

प्रयोगशाला प्रभारी
ए.एस. कॉलेज, बिक्रमगंज, रोहतास

विनयशीलता पत्थर को मोम बना देती है। आचार, विचार एवं भाव में स्वच्छता, विमलता, सरलता ला देती है। आचार, विचार एवं भाव का सम्मिश्रण ही तो सुन्दर चरित्र है। सादगी, सरलता, विनयशीलता की मखमली सेज पर ही सोती है, पनपती है परिमार्जित होती है, मुसीबतों झंझावत को झेलने की क्षमता उत्पन्न करती है। ठीक ही कहा जाता है नम्रता से मुसीबतों में भी जीने की कला सीख लेते हैं, कड़कती बिजलियों में भी अशियाना ढूंढ लेते है।

'फलसफा सीखना है जिन्दगी का उन परिन्दों से,
जो कुँए में पड़ा गेहूँ का दाना भी ढूंढ लेते है'।

विनयशीलता कुदरत का दिया हुआ अजीब तोहफा है। इस जिन्दगी में गम भी धूप भी है तो खुशियों की बरसात भी, व्यथा है तो संवेदना भी। नम्रता की मीठी फुहारों से हमारा जीवन रिमझिम बना रहे तो क्या हर्ज इसी विनम्रता के साथ हम जीना सीखें।

विनयशीलता का आवरण धर्म है, वैसे में धर्म का मूल तत्व मनुष्यता की उपासना बतलाया गया है जिसे व्यक्ति धर्म का सार जानता है। वह अपने जीवन को धर्म के पवित्र ढ़ाचे में ढाल सकता है। मनुष्य का सारा जीवन धर्म के यथार्थ धरातल पर आधारित है। सिर्फ मानव ही नहीं, सृष्टि के कण–कण में भी अपना–अपना धर्म है जिस तरह अग्नि का धर्म जलाना, जल का धर्म बहना है, उसी तरह मनुष्य का धर्म मनुष्यता एवं नम्रता है, विनयशीलता है। मनुष्यता जिस व्यक्ति में नहीं है वह व्यक्ति पशु जैसा है। जीवन में धर्म का पालन करने की अपरिहार्यता है जीयते अति धर्मः और धार्यते अति अधर्मः के अनुसार जो हम धारण करते है वह धर्म है जो धारण नहीं किया जा सकता अधर्म है। किन्तु धर्म और अधर्म के बीच मानवीय रेखा खींचने की तरकीब नहीं आ सकती है, जबतक हम धर्म के रहस्य से भली भांति परिचित न हों। पशु और मनुष्य में जो भेद है वह इसी बिन्दु को लेकर है कि हमें सोचने समझने की शक्ति दी गयी है और पशु में यह शक्ति कम होती है। हम आत्मकल्याण के लिए विचार पूर्वक कर्म कर सकते हैं। ज्ञान और विवेक बिना कर्म अधूरा है। महर्षि वेद व्यास महाभारत में कहते हैं ''न मानुषात श्रेष्ठ हि, यानि मनुष्य सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। इसलिए मनुष्यता के निर्माण की प्रक्रिया में निरन्तरता रहनी चाहिए। मनुष्य का निर्माण ही धर्म की मूल आत्मा है। मानवीय मूल्यों के आधार पर किया गया कार्य निरन्तर उज्जवल रहता है। महल खंडहर में बदल जाते है। किले ध्वस्त हो जाते हैं। खंडहरों पर घास उग आती है लेकिन धर्म के आधार पर निर्मित मनुष्यता से दैवी सुगंध सदैव निकलती है। वेदोंद्वारक महर्षि दयानन्द कहते हैं वेदों और शास्त्रों के बताये मार्ग पर चलने का संकल्प करके हमें अपने जीवन को सार्थक बनाने की कोशिश सदा करते रहना चाहिए वे कहते है; महापुरुषों के आचारण अनुकरणीय तो हो सकते हैं; परन्तु इन्हें भी सोच–समझकर अपनाना चाहिए अर्थात् अपनी बुद्धि विवेक का प्रयोग करते हुए जो आत्मा अनुकूल हो उसे ही अपनाना चाहिए। इस तरह

जीवन को सुखद रास्ते पर चलते हुए हमें हरपल आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। आज के भौतिक वादी चमकीले परिवेश में हर जगह का वातावरण अशांत है। मनुष्यता नियंत्रित हो गयी है आदमी–आदमी के खून का प्यासा हो गया है।

'अजीब हर शहर का मंजर दिखाई देता है
हर एक हाथ में खंजर दिखाई देता है
ये कैसे लोग हैं जिनके मकां है शीशे कें
उन्हीं हाथों में पत्थर दिखाई देता है।'

ज्ञान की निर्झरणी अंध विश्वासों एवं अहंकारों की मरूभूमि में सूख गयी है, किसी में भी तनिक मात्र की न तो विनयशीलता रह गयी है और न मानवीयता। सभी अपने अहंकार के मद में चूर हैं न तो उनमें लोचशीलता है न वैचारिकता। यह भयावह स्थित है। जब तक व्यक्ति अपने मद में अहंकार में चूर रहेगा, लिप्त रहेगा, तब तक मनुष्य विनयी नहीं हो सकता और जब तक मनुष्य विनयी नहीं होगा तब तक एक सुन्दर समाज की संरचना कल्पनाविहीन होगी। यह सुन्दर समाज की परिकल्पना तभी कारगर होगी, जब मनुष्य अपने आप को विनयशीलता एवं नम्रता के ढ़ाचे में ढ़ाल सके, तभी समाज का उत्थान होगा। जबतक मनुष्य के ह्रदय में अहंकार रूपी रावण वास करता रहेगा। तब तक मनुष्य में विनयशीलता नहीं आ सकती। अहं के शून्य होने से ही मानसिक, आर्थिक, वांचिक विनय प्रतिधन होगा। कई बार मनुष्य अपने आप को अहं से मुक्त कर देगा।

आज हरेक जगह समाज में अशांति, कुरीति, अनुशासनहीनता के काले बादल मड़रा रहे हैं, जिससे समाज का वातावरण विषाक्त हो गया है, पिता पुत्रों की बातों को नहीं मानता। पुरानी पीढ़ी एवं नयी पीढ़ी में टकराव है। जिससे समाज का वातावरण विषाक्त होते जा रहा है। पत्नी पति का आदर नहीं करती, पति पत्नी को यथा स्थान अपने जीवन में नहीं देता। इस वातावरण के विषाक्त होने का मूल कारण मनुष्य से मनुष्यता का गायब होना है। मनुष्य विनय के पद से विचलित होते जा रहा है। मनुष्य में बचपन से ही विनय का अंकुर नहीं उग पाता। यही विनय का अभाव परिवार, समाज एवं राष्ट्रीय जीवन में शैतान की आंत की तरह बढ़ रहा है, जिससे न समाज सुखी है न परिवार स्वस्थ है, और न राष्ट्र विकसित हो रहा है।

समाज एवं मनुष्य के निर्माण में गुरू की अहम् भूमिका है। मनुष्य अपने गुरू के बताये हुये रास्ते पर चलने के लिए तैयार नहीं है। पहले के लोग विनयी होते हुए भी वे गुरू की बातों को ध्यान पूर्वक सुनते थे, उनकी पंकज पा सिंधू नररूप हरि और वंदन गुरू प द पदूम परागा।

इस प्रकार गुरू प्रशंसा विनयी व्यक्ति ही कर सकता है। विनीत शिष्य, विधिवत व्यवहार एवं आचारण से विनय के निम्न अर्थ निकलते हैं।

1. गुरू की आज्ञा पालन, 2. गुरू की सेवा सुश्रुर्षा, 3. सुशील सदाचार, 4. अनुशासनशीलता, 5. मानसिक, वाचिक एवं आर्थिक नम्रता, 6. गुरू के प्रति अप्रति कुशलता, 7. गुरू की कठोर शिक्षा को स्वीकारना, 8. साधु समाचारी का पालन।

विनय का अर्थ अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए किया गया कोई उपाय नहीं है, अपितु गुणी जनों और गुरू जनो महान योद्ध साधक पवित्र गुणों के प्रति सहज प्रमोद भाव है। जो गुरू एवं शिष्य के साथ तादात्म्य एवं आत्मीयता का काम करता है। इसी के माध्यम से प्रसन्नता पूर्वक अपनी प्रति संपदा एवं आचरण संपदा से शिष्य को लाभान्वित करते हैं।

सभी जगहों पर ये उल्लेख मिलता है या समाज में यह बात देखने को मिलती है कि विनीत तथा नम्र होने के लिए अनुशासन प्रिय होना जरूरी है। इसलिए अनुशासन पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि विनयशीलता के प्रति अनुशासन बहुत जरूरी है। बिना अनुशासन के विनीत या नम्र होना सम्भव नहीं है, क्योंकि विनयशीलता प्रगति का मूल मंत्र है। आज हम देख रहे हैं कि परिवार समाज और राष्ट्र के विग्रह, द्वन्द्व का दावानल सुलग रहा है। अनुशासन–हीनता दिन दुनी, रात चौगुनी बढ़ रही है। जीवन में धन जन परिजन सब कुछ नहीं है। जीवन की अंतिम घड़ियों में शरण रूप नहीं हो सकता। धर्म ही सच्चा शरण है, इसी के शरण में जाने से जीवन मंगलमय् बनता है। जो फूल खिलता है, वह अवश्य ही एक दिन मुरझाता है। जन्म लेने वाला मृत्यु का ग्रास बनता ही है। लेकिन मृत्यु कैसी है यह विवाद का विषय नहीं है। जो अच्छा कर्म करेगा, जो विनीत होगा, जो अनुशासित होगा, उसे समाज मरणोपरांत भी याद करता रहेगा। विनीत व्यक्ति के मरने से समाज की अपूर्णीय क्षति होती है। विनीत एवं अनुशासित होना आज के वातावरण के लिए बहुत ही जरूरी है। समाज निर्माण एवं राष्ट्र निर्माण के लिए मनुष्य को विनयी होना अति आवश्यक है, तभी स्वस्थ समाज की कल्पना की जा सकती है, और सुन्दर समाज एवं राष्ट्र का निर्माण हो सकता है।

संक्षेप में हम निःसंकोच कह सकते हैं, विनयशीलता मनुष्य के जीवन का श्रृंगार है, एक देवी सौन्दर्य है, हर्ष की भाषा है, और व्यक्तित्व का प्रसाद है। इसके अभाव में न तो व्यक्तित्व की पूर्णता आएगी न ही, समाज में सुन्दर फूल खिलेंगें। ●

सेवा निवृत्ति का
यथार्थ तथा समाधान

प्रो० शंभु शंकर सिंह

पूर्व-अध्यक्ष
वनस्पति विभाग

शीर्षक भयाक्रांत कर देता है। आदर्शों की चिता धू–धूकर जलती है। कहीं, वय भी गयी तो घुटन के कड़ाह में मनुष्य को ग्रास बनाती है। जी यह सत्य ही नहीं परिवेशीय कटु सत्य है। ''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गा दपि गरीयसी'' और,

सोई सुत धन्य सकल बड़भागी। जे पितु मातु चरण अनुरागी।।

यह आदर्श पूत चौपाई आज सिसक रही है। बुढ़ापा सहारा खोजता है, पुत्रेषणा सनातम की खोज है। कहा गया है कि जैसे चांद बिना रात, दीप बिना मंदिर, क्षीर बिना धेनु, फूल बिना तरूवर श्री हीन होते हैं वैसे ही पुत्र बिना माता–पिता जीवन की सार्थकता खो देते हैं। पुत्र बिना जीवन धिक्कार है? माता–पिता किस अरमान से पुत्र–रत्न की बाट जोहते हैं। जब तक आँगन में किलकारियाँ न गूँजे वह आँगन श्मशान माना जाता है। वंश वेल की सुंदर गुल्म लताएँ आँगन की अमराई हैं। जिसमें वाल्य केलि मोद का पुष्प है।

'जीवन को जन्नत बनाती हैं नारियाँ'
'उससे ही गुँजती हैं घर में किलकारियां'

जीवन भर मातायें अपने पुत्र को दूध पिलाती है, अपने आराम और चैन को गिरवी रख पिता अपनी संतति के मुख का हास अम्लान रखता है। वह सपनों का रंग महल सजाता है, उसकी कल्पनाओं में गुलाब खिलता है। स्वयं कांटों में रहकर गुलाब को खिलने का सुअवसर जुटाता है। उसका वह स्वप्निल संसार तार–तार हो जाता है, आज की अधिसंख्य संतति अखबार की कतरन की तरह निरर्थक और सार हीन है। जिसमें माता–पिता के प्रति दिल से अनुराग की धड़कन शेष मात्र न हैं। यह समाज की परम्परागत किन्तु सार्थक भावोत्कर्ष की करूण कहानी है। आये दिन पेंशनर्स को बातें और सहायता का उभरता चित्र समाज के आइने में उभरता रहता है। शिक्षा विभाग के एक जबाबदेह पद से निवृत प्रधानाध्यापक की बातों ने मुझे चौका दिया श्रीमान जी के जीवन के 84वें बसंत का अभिषेक किया है। संस्कार के प्राचीन जीवन मूल्यों के हिमायती हैं। वस्त्र खादी, स्वभाव सरल, बातें बेतरह ज्ञान भास्कर, भाल पर उभरी रेखायें मनु की जल खंड प्रलय पर उभरी दुश्चिंताओं की प्रतिवोधिनी है, उस विज्ञ पुरूष की कहानी भले ही हास्य से तरंगायित लगी किंतु क्रूर विद्रुप और व्यंग्य की छेनी से किसी भी भावुक व्यक्ति के कलेजे को तिलतिल काट सकती है।

माननीय व्यक्ति का नाम इसलिये नहीं रख रहा हूँ कि कहीं इसका भेद उनकी पुत्र वधू तक पहुँच जाए तो नियत मौत की साया से यह भयंकर होगा। श्रीमान जी विधुर हैं, पेंशन की मोटी राशि की निकासी तो करते हैं, किन्तु व्यसन और प्रबंधन का भार बहूजी देखती है। प्रत्येक माह की पचीसवीं तारीख से प्रधानाध्यापक जी के कर्ण रंध्र की निर्ममता पूर्वक पिटाई होती है।

'कब जायबि पिसिन निकाले... आदि'। वे सह्रदय इंसान हैं।

कोसी की प्रलंयकारी बाढ़ से क्षत–विक्षत होकर हजार रूपये की राशि उन्होंने बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ सरकार को दी किंतु भावना

का आवेग थोड़ा कम हुआ तो याद आया कि वधू के क्रोध की वैतरणी को कैसे लांघ सकेंगे। यह बात बड़ी साफगाई से सभा में तो उन्होंने रखी किंतु साथ ही अनुनय से हाथों को जोड़कर कहा, यह संवाद पुत्र वधू तक न पहूँचे।

हाय रे जिंदगी–उत्पीड़न, आक्रोश, असमंजस, वीरानगी, भयाकुलता का जीवन नरक! पेंशनर के सर पर खड़ी यह है पारिवारिक दीवार! अपनों ने ही वह किया जो विराने सोच नहीं सकते। घर की संतति ने पिता के भावना गेह को लूट लिया। धिक् जीवन प्रभु से प्रार्थना करता है।

''कितने दिन और प्रभु कितने दिन और
बांधे रहूँ सर पर ये जीवन के मौर।''
आयु की जमुना पर, तन कायह ताजमहल,
मात्र अब खंडहर है, खत्म हुई चहल–पहल,
जगह–जगह मकड़ी की सौर
कितने दिन और प्रभो! कितने दिन और?
धरा नहीं सहे मुझे, गगन करे तंग
अपने पर व्यंग्य, अब तो निज पद तल दो ठौर
कितने दिन और प्रभु कितने दिन और।

आज का समाज स्वयं की पहचान भूलता जा रहा है। ज्ञान भक्ति और कर्म योग से जो व्यक्ति स्नात नहीं होता वह दिग्भ्रमित और रूग्ण व्यक्ति की परिणति रूग्ण समाज के गठन का कारण बनती है। स्वानुभूति में युगानुभूति प्रतिबिम्बित होती है। मनुष्य की उदात्त आत्मा विश्वात्मा से तादात्म्य स्थापित कर लेती है। इसलिए व्यक्ति को मार्जिरत होना मनुष्य की पहली सीढ़ी है। सात्विक कर्म योग से संयुक्त व्यक्तित्व गंगा का प्रवाहमय नीर है, जो समाज में घुसी गलीजों का भी वारा–यारा कर उसे पाक पूत बना दे। पेंशनर पर मनोवैज्ञानिक दबाब सेवानिवृत काल से शुरू हो जाता है। वैयक्तिक भिन्नता के चलते वैचारिक और सामाजिक धरातल पर भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की क्रियायें प्रतिक्रियायें अभियोजन–समायोजन भिन्न होते हैं। जिन व्यक्तियों ने कोर्ट कचहरियों और सरकारी प्रतिष्ठानों में सेवायें दी है, उनकी जीवन शैली प्रायः सेवा निवृत्ति के बाद एक नया मोड़ लेती है। पुलिस सेवा में कार्यरत व्यक्मियों का सामाजिक अभियोजन जटिल होता है। प्रशासनिक उच्च सेवा में कार्यरत व्यक्ति अपने प्रशासनिक अहं के चलते आम समाज से कट जाते हैं। वे शहरी जीवन में अपार्टमेंट की चार दीवारी से बाहर नहीं होते और वे दिन गिन–गिनकर शीघ्र ही मृत्यु का प्रिय भाजन बनते हैं। शिक्षा विभाग में कार्यरत शिक्षक ही सेवा निवृत होकर भी सेवानिवृत का दंश नहीं झेलते। यदि शिक्षा का अमृत उनकी नाभि में हैं, तो वे जीवन और मरण दोनों को शाश्वत यश के साथ आलिंगित करते हैं। उनकी यश काया जीवन और जीवनोंपरांत भी लौकिक काया से बड़ी होती है। उनके लिये कभी जीवन में पतझड़ नहीं आता है। धरती का संगीत उनके लिए कभी मंद नहीं पड़ता।

आनंद का निर्झर उन्हें शाश्वत शीतलता बांटता है। समाज के शेष व्यक्ति जिन्होंने अपनी स्वार्थ शिला को विखंडित नहीं होने दिया है, उन्हें तो पेंशनोपरांत जीवन–नरक से भी असुंदर और भयावह है।

इसलिए सुखद जीवन की कुंजी है सुखद मन, चिंतनशीलन आत्मा, संवेदनशील भावनायें, प्रगतिशील विचार प्रवाह और गतिशील सोच। इन अमूर्त को यदि भूर्त बना दिया जाये तो जीवन धन्य हो जाएगा। गलती है हिमशिला सत्य है गठनदेह की खोकर। पर होती कितनी असीम सुधा पयस्विनी होकर। और अहं को वयं बना देना जीवन की धन्यता है। अपनी दुर्बलता को अपने ही अंतस् में सद्वृतियाँ के स्थानापन्न कर दिया जाये जो सहज जीवन की शिला पर पड़ी तमसवृतियाँ गल–गल कर मार्जरित हो जायेंगी। स्वच्छ सुंदर जीवन की उषा से दीप्र जीवन की लाली जो स्वयं को लालिमा रंगित कर देगी। और वह है आध्यात्म विद्याएं, अद्वितीय–ज्ञान का राज। यह ज्ञान 'समीम के असीम' क्षुद्र को विराट् बिंदु को सिंधु और लघु को मित्रों की शेष जिंदगी मंगल मूल बने इस लेख का विवेच्य विषय है। तथागत ने अपने भिक्षुओं को एक बार संबोधित करते हुए कहा था।

ओ भिक्क्षव, इस दुनिया में कोई गरीब नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के अंतस में एक लाल की गठरी है। वह गठरी की गांठ कैसे खोली जाए। यह नहीं जानता इसलिए वह गरीब है। और यह अकिंचनता दिव्य ज्ञान से दूर होती है। बिना ज्ञान के भक्ति नहीं होती ज्ञात्वा देवी सर्व पाशाषहानि आत्मा ज्ञान से ही मनुष्य जन्म–मरण रूप संसार के बंधन से मुक्त होता है।

चित की अस्थिरता मनुष्य को दुर्बल से दुर्बलतर बनाती है। इसका कारण चित में प्रेम और लोकोपकार की बुनी हुई लौ है। सामाजिक वैषम्य चाहे आर्थिक, धार्मिक, जातिगत हो, के भेदभाव को विस्मृत कर आध्यात्मिक सोच की श्री वृद्धि मनुष्य की पूर्णता की यात्रा है। सच्चा आध्यात्मिक व्यक्ति वह है, जो सबको परमात्मा का बंदा मान उस पर उन्मुक्त प्रेम पंथि लुटाये, जिसने प्रेम करना सीखा है। उसे मंदिर, मस्जिद जाने की आवश्यकता नहीं होती। मन ही प्रेम का मंदिर है। मन ही सारी जटिलताओं की कुंजी है, मन राम है, मन ही रावण है मन को प्रेम के पंथ पर अग्रसर कर दिया जाय, तो जीवन सुंगध बन जाये। सुगंध अपने इर्द–गिर्द सबको गद्गद् कर देगा। इसी जीवन के क्षण को ज्योतिर्मय क्षण कहा जाता है। ज्योति कलश के छलकते ही कायिक शरीर अपने मूल काया जो सत्यम् शिवम् सुंदरम् में रूपांतरित हो जाएगा और जीवन उपासना बन दमक उठेगा। ●

आधी दुनिया
का सच

अक्षय कुमार प्यारेजी

ए० एस० कॉलेज, बिक्रमगंज

1. ''सबसे साधारण और आम आदमी भी अपने चरित्र का हिंसक व अति स्वार्थी पक्ष उन्हीं के सामने दिखलाते हैं, जो इसका सामना करने की ताकत नहीं रखते।''

2. ''मनुष्य–स्वभाव का बुरा पक्ष तभी तक नियंत्रित रखा जा सकता है जबतक कि उसे व्यवहार में आने का कोई मौका ही न दिया जाय। हम जानते हैं कि जानबूझकर किसी उद्देश्य से नहीं बल्कि आदतानुसार जिसके सामने दूसरा समर्पण कर दें, वह लागतार उस पर हावी होता रहता है– उस बिन्दु तक, जब तक कि सामने वाला विरोध करने के लिए बाध्य न हो जाए।

3. ''रोग, दारिद्रय और अपराध बोध के बाद जीवन की खुशियों–व–सुख के लिए सर्वाधिक घातक होता है अपनी सक्रिय क्षमताओं को योग्य अभिव्यक्ति न मिल पाना।''

ऊपर के तीन कथनों का तात्पर्य है कि ये तीनों कथन एवं छिपे तथ्यगत सत्यता का मारक एवं घातक असर स्त्रियों के सन्दर्भ में सर्वाधिक है। पूरी दुनिया के जैविक निर्माण में स्त्री–पुरूष का ही योगदान है। फलतः आधी दुनिया स्त्रियों की है। इस आधी दुनिया का कड़वा सच यही है कि वैदिक काल से अब तक शोषण के बदलते स्वरूपों के साथ इनका शोषण नए पुरूषगत सामंती सोच के साथ जारी है। इनके उत्पीड़न और दासता का इतिहास आज भी अपने में नया अध्याय नए रूपों में जोड़ते जा रहा है। दोयम दर्जे की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति इनकी नियति बन गयी है।

हलांकि स्त्री–दासता या स्त्री–पुरूष असमानता के ऐतिहासिक कारणों पर, स्त्री उत्पीड़न के राजनीति अर्थशास्त्र और विशेषकर घरेलू श्रम–शक्ति की प्रकृति पर, पुरूष वर्चस्ववाद के दर्शन एवं मनोविज्ञान पर, सामाजिक आर्थिक संरचना के साथ यौन–उत्पीड़न के अन्तर्सम्बन्धों पर, यौनिक विभेद और यौन राजनीति की भूमिका पर तथा स्त्री आंदोलन की दशा और दिशा तथा स्वरूप से जुड़े प्रश्नों पर, विशेषकर बीसवीं सदी के दौरान घनघोर बहसें चलीं हैं, ये बहसें आज भी जारी है। लेकिन कोई खास परिणाम निकलकर सामने नहीं आया है।

इनके कारणों की सूची लंबी है। सर्वप्रथम, हमारा सामाजिक परिवेश ऐसा नहीं है कि स्त्रियाँ अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के विरूद्ध मुखर हो सकें। बचपन से ही समर्पण, निर्भरता, त्यागपूर्ण प्रेम, वफादारी के आदर्शो एवं नैतिक शिक्षाओं से इनके सोंच को अनुकूलित करके उन्हें दिमागी गुलाम बनाने का प्रयास किया जाता है। अन्य उत्पीड़ित समुदायों से इनकी स्थिति इस मायने में भी भिन्न है कि उनका 'मालिक' उनसे सिर्फ उनकी सेवाएँ और सम्पूर्ण आज्ञाकारिता ही नहीं बल्कि उनकी संवेदनाएँ एवं भावनाएँ भी चाहता है, वह उनसे गुलाम होने की नहीं बल्कि एक प्रिय गुलाम होने की अपेक्षा रखता है। यह भी पुरूषों का ही स्वार्थ है कि उन्होंने स्त्रियों के सामने विनम्रता, पूर्ण समर्पण और व्यक्तिगत इच्छा के हनन को यौनाकर्षण के अभिन्न अंग के रूप में रखा ताकि मनोवैज्ञानिक रूप से

स्त्रियाँ इतनी समर्पित हो जाएँ कि यौनिक–स्वेच्छा और स्वतंत्रता के बारे में सोच भी न सकें और उन्हें अपनी पराधीनता में ही सुख का अनुभव हो।

स्त्रियों के संदर्भ में पुरूष के वर्चस्ववादी नजरिया के प्रति जॉन स्टुअर्ट मिल के विचार का उद्घाटन करना समीचीन होगा। मिल का कहना है कि ''आधुनिकत दुनिया प्राचीन दुनिया से इस मायने में भिन्न है कि अब मनुष्य जन्म से नहीं बल्कि अपनी योग्यता से समाज में स्थान बनाता है। (हालांकि मिल का यह विचार पर्यवेक्षण प्राचीन दुनिया से तुलना के सन्दर्भ में सापेक्षतः ही सही है। यह आंशिक और सतही सच है) पूर्णतः सत्य यह है कि उन्नतम पूँजीवादी जनवाद में भी योग्यता का उत्तोलक पूँजी की ताकत ही होती है लेकिन, अकेली स्त्रियाँ इसका अपवाद हैं जिन्हें महज स्त्री के रूप में पैदा होने के कारण विशिष्ट काम सौंप दिए जाते हैं और जिन्हें अपनी योग्यता के आधार पर अपना कार्यक्षेत्र चुनने या समाज में अपना स्थान बनाने का अवसर नहीं मिलता।'' जिन महिलाओं ने खासकर भारतीय महिलाओं ने अपने बूते अपना अलग सह–अस्तित्व स्थापित करने की कोशिश की है, उनपर पत्थर जरूर उछाला गया है। इस पत्थर यानी लांक्षण, व्यंग्य, छींटाकक्षी के डर से उनके अन्दर पनपने वाली कोमल भावनाएँ पहले ही सहम जाती है।

प्रायः महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि उनका स्वभाव ही घरेलू होता है। फलस्वरूप राजनीति और जनकल्याण के बजाय उनकी रूचि खाना पकाने और घर सम्भालने में ही होती है। मिल साहब– इसका प्रतिकार करते हैं। वे कहते हैं कि स्त्री–स्वभाव की यह धारणा गढ़ी हुई है जो कुछ अर्थो में बलात दमन और कुछ अर्थो में अस्वभाविक प्रोत्साहन का परिणाम है। वास्तविकता यह है कि विविध सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रियों की रूचि और क्षमता को कभी परखा ही नहीं गया, पीढ़ी दर पीढ़ी घरेलू कामों के लिए ही उन्हें तैयार किया । बाहरी क्षेत्रों में रूचि तक के विरूद्ध तमाम सामाजिक–सांस्कृतिक वर्जनाएँ आरोपित करके उनकी चेतना को अनुकूलित कर दिया गया है। सच तो यही है कि पुरूष अपने परिवार की स्त्री के चरित्र, स्वभाव को तो जान सकता है, पर उसकी योग्यता को नहीं। स्त्रियाँ अपने मालिक से वफादारी और सेवा का रिश्ता निभाते हुए भी कभी नहीं खुलती।

चार्ल्स फरिये का यह कथन कि ''किसी भी समाज में आजादी का एक बुनियादी पैमाना यह है कि उस समाज विशेष में स्त्रियाँ किस हद तक आजाद हैं।'' यह सिर्फ सैद्धांतिक है, व्यावहारिक सच्चाई कुछ और है। इस सन्दर्भ में मार्क्स–एंगेल्स का विचार समीचीन है। इनका कहना है कि ''निजी सम्पत्ति पर आधारित सामाजिक–सम्बन्धों, संस्थाओं–मूल्यों के अस्तित्व में आने के साथ ही स्त्री समुदाय की दासता की शुरूआत हुई।'' उनका आगे कहना है कि बेवस स्त्रियों एवं बच्चों की सस्ती श्रमशक्ति में आने के साथ ही स्त्री समुदाय की दासता की शुरूआत हुई।'' उनका आगे कहना है कि बेबस स्त्रियों एवं बच्चों की श्रमशक्ति की लूट पूँजीवादी समृद्धि की अटालिका की एक महत्वपूर्ण आधारशिला है। पूँजीवादी समाज में मेहनतकश स्त्रियाँ निकृष्टतम कोटि की उजरती गुलाम होने के साथ ही यौन आधार पर शोषण–उत्पीड़न का शिकार होती है। सम्पत्तिशाली वर्गो की स्त्रियाँ भी सामजिक श्रम से कटी हुई थी घरेलू दासता और पुरूष–स्वाामित्व के बोझ से दबी हुई होती हैं। आधी आबादी की सक्रिय पहलकदमी और भागीदारी के बिना सर्वहारा वर्ग अपना ऐतिहासिक मिशन पूरा नहीं कर सकता और उस ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने में भागीदारी के बिना स्त्री–मुक्ति महज एक 'यूटोपिया' ही बना रह जाएगा।

अब एक नजर उन पर भी, जो जैसी हैं, या जैसी रही हैं और अपनी योग्यताएँ पहले ही दिखा चुकी हैं। अगर और कुछ नहीं तो जो वे कर चुकी हैं, कम से कम वह तो यह सिद्ध करता ही है कि वे क्या कर सकती हैं। जब हम देखते हैं कि महिलाओं को पुरूषों के लिए सुरक्षित व्यवसायों के लिए नहीं बल्कि उनसे दूर रखने के लिए कितनी मेहनत से प्रशिक्षण दिया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि जब मैं इस संदर्भ में बात करता हूँ कि उन्होंने वाकई क्या कर दिखाया है, तो यह उनके पक्ष में एक आधार ऐसा होगा जो काफी कमजोर है। क्योंकि इस मामले में एक नाकारात्मक प्रमाण की कोई कीमत नहीं जबकि सकारात्मक प्रमाण निर्णायक है। यह असम्भव नहीं कि एक महिला होमर, अरस्तु, माईकल ऐंजेलो नहीं हो जाए क्योंकि आजतक किसी भी महिला ने इन लोगों जैसे विलक्षण कार्य नहीं किए। यह नकारात्मक तथ्य इस प्रश्न को अनिश्चित और मनोवैज्ञानिक विचार–विमर्श के लिए खुला छोड़ देता है। लेकिन यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि कोई महिला महारानी एलिजाबेथ, जॉन ऑफ मार्क और इंदिरा गाँधी हो सकती है। क्योंकि यह एक अनुमान नहीं बल्कि वास्तविकता है। एक दिलचस्प बात यह है कि कानून या समाज महिलाओं का जिन–जिन कार्यो के लिए निषेध करता है, महिलाओं ने सिद्ध किया है कि वहीं कार्य करने में वे सक्षम हैं। महारानी एलिजाबेथ, महारानी विक्टोरिया को यदि विरासत में राजगद्दी नहीं मिलती तो उन्हें छोटी से छोटी राजनीतिक जिम्मेवारी भी न सौंपी जाती, लेकिन इस उत्तरदायित्व को दोनों ने बहुत कुशलता से

निभाया। लेकिन ये आधी दुनिया के एकाध सच हैं।

तमाम आधुनिक परिवर्त्तनों के बावजूद स्त्री की स्थिति अब भी आंतरिक तौर पर गुलमों से भी बदतर है। क्योंकि कोई भी दास इस हद तक और इतने गहन–व–पूर्ण अर्थो में दास नहीं होता जितना की पत्नी। मालिक के निजी दास के अतिरिक्त कोई भी दास चौबीसों घंटे दास नहीं होता। सामान्यतः एक सिपाही की तरह उसका भी एक निश्चित कार्य होता है और जब वह काम खत्म हो जाता है तो निश्चित सीमा में वह अपना समय अपने परिवार के साथ बिताता है जहाँ मालिक का दखल ना के बराबर होता है। लेकिन पत्नी के साथ ऐसा नहीं होता। इन सबसे बढ़कर इसाई देशों में एक स्त्री दास को यह अधिकार होता है, उसका नैतिक दायित्व होता है कि वह अपने मालिक को अंतिम अंतरंगता से इन्कार कर दे। लेकिन पत्नी के साथ ऐसा नहीं होता। चाहे वह दुर्भाग्य से कितने ही क्रूर पति के साथ क्यों न बंधी हो, चाहे वह जानती हो कि पति उससे नफरत करता है और कष्ट देना ही पति के दैनिक सुखों का एक भाग है और हालांकि उसके लिए अपने पति से घृणा करना असम्भव है फिर भी, उस पर वह अधिकारपूर्वक मनुष्यता का अधमतम कृत्य कर सकता है। उसकी अभिरूचि के बगैर एक पाशविक कृत्य में उसे शामिल कर सकता है।

एक बात अक्सर कही जाती है कि क्या समानता का अर्थ यह है कि जो पति करेगा, वहीं पत्नी भी करेगी?क्या परिवार का कोई मुखिया नहीं रहेगा? वैसे ही जैसे कोई समाज सरकार के बिना कैसे चल सकता है? एक परिवार में भी राज्य की तरह ही किसी एक व्यक्ति के तो अंतिम शासक होना ही चाहिए। यदि वैवाहिक लोगों के मतों में भिन्नता है तो यह कौन निश्चित करेगा?पति–पत्नी दोनों तो मनमानी नहीं कर सकते। किसी न किसी तरह एक निर्णय तो लेना ही पड़ेगा।

यह सच नहीं है कि दो लोगों के बीच स्वैच्छिक सम्बन्धों में एक व्यक्ति पूर्ण शासक होता है और यह कि कानून को यह निश्चित कर देना चाहिए कि उन दोंनों में से कौन शासक होगा?विवाह के बाद स्वैच्छिक सम्बन्ध का सबसे आम उदाहरण होता है–कारोबार में साझेदारी और यह कभी भी लागू करने की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी। एकांतिक सत्ता के तहत पति ही पत्नी पर पूरा अधिकार रखता है।

कुल मिलाकर अंततः यह कहने में कोई संकोच नहीं कि आधी दुनिया की निर्भरता, दासता की आदिम अवस्था का बदला हुआ स्वरूप है। राजव्यवस्था के नियम–कानून हमेशा उन सम्बन्धों को मान्यता देकर ही आरम्भ होते हैं जो व्यक्तियों के बीच पूर्व से ही विद्यमान हों। राजव्यवस्था महज ऐसे तथ्यों को कानूनी अधिकार में तब्दील कर देती है।

इसका मतलब यह भी नहीं कि आधी दुनिया आज भी वहीं है जहाँ सदियों पूर्व थी। काफी दूरी तय की जा चुकी है। अधिकांश दूरी तय करनी है। अपने हक–व–अधिकार साथ ही कर्त्तव्य के प्रति आधी दुनिया को स्वयं आगे आना होगा। आज हम उस दुनिया में जी रहे हैं जहाँ स्त्री के सहयोग एवं सहभागिता के बिना अकेले पुरूषों पर समाज की सारी जिम्मेवारी छोड़ देने मात्र से सूरत नहीं बदलेगी। 'स्त्री–पुरूष साझीदारी, रहे न कोई अत्याचारी' यह भावना विकसित करनी होगी। ●

लेखक ने ''महिला शोषण के सामाजिक पहलू'' शीर्षक पर मगध विश्वविद्यालय, बोधगया से शोध कार्य किया है।

गरीबी: वर्त्तमान
परिदृश्य एवं भावी चुनौतियाँ

डॉ० के० राय

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग
ए.एस. कॉलेज, बिक्रमगंज

विश्व ग्राम की अवधारणा को साकार करने के वर्त्तमान वैश्विक परिवेश में निर्धनता एक बेहद कष्टदायक अभिशाप है। यह जीवन का सबसे बड़ा न किया हुआ ऐसा अपराध है जिसकी सजा बेगुनाह, बेबस व लाचार इंसान को भुगतनी पड़ती है। मानव जाति का इससे बड़ा और क्या दुर्भाय हो सकता है कि विधाता की बनायी हुई इस धरती पर एक तरफ जहाँ सुख–सम्पन्नता, भोग–विलास व ऐशो–आरम अपनी पराकाष्ठा की सीमा पर है वहीं दूसरी ओर करोड़ों अभागे इंसान जिल्लत, भूख एवं गरीबी के दुःख से पीड़ित है। जालिम, जाहिल, कायर व बूजदिल लोग इसे तकदीर का नाम देते हैं और असहाय इंसान इसे अपनी बेवसी मानता है। अगर यह सच है कि भाग्यविद्याता ने इंसान के पुतले में जान डालते वक्त उसके हाथ की लकीरों के साथ मनचाहा खिलवाड़ किया है, तो इंसानों की इस धरती पर बसने वाली इंसानियत का यह तकाजा है कि भाग्य की इन लकीरों को हमेशा–हमेशा के लिए मिटा दिया जाये।

सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास, शुरू से ही भारतीय आयोजन का मूल दर्शन रहा है। परन्तु विडम्बना यह है कि छः दशकों की एक लम्बी पारी खेलने के बावजूद हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ गरीबी उन्मूलन (Poverty Eradication) की बात तो दूर रही, अभी तक अभावग्रस्तता या अतिहीनता (Destitution) की अवस्था को दूर करने में भी असमर्थ रही है। भले ही निर्धनता–अनुपात के अनुमान और प्रक्षेपण (Projections) कुछ भी कहानी करें, गरीबी एवं आय वितरण की विषमताएँ घटने की बजाय बढ़ रही है।

गरीबी अथवा निर्धनता का अर्थ उस स्थिति से है, जिसमें समाज का एक बड़ा भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में असमर्थ रहता है। तीसरी दुनिया के देशों में बड़े पैमाने पर निर्धनता पाई जाती है, जबकि यूरोप एंव अमेरिका के कुछ भागों में ही निर्धनता विद्यमान है।

निर्धनता की परिभाषा विभिन्न समाजों (देशों) में भिन्न–भिन्न प्रकार से दी गई है तथापि इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन–स्तर की कल्पना है। उदाहरण के लिए अमेरिका में निर्धनता की धारणा भारत से बिल्कुल ही अलग होगी क्योंकि अमेरिका में साधारण व्यक्ति कहीं उच्च जीवन स्तर पर रह रहा है।

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों की 45 प्रतिशत जनसंख्या की दैनिक आय 1 डालर से कम है और 82 प्रतिशत जनसंख्या की दैनिक आय 2 डालर से कम है। फिर इन देशों में 'निरपेक्ष निर्धनता' भी देखने को मिलती है। दो वक्त का भोजन इनके लिए विलासिता है, अपने स्वामियों के उतरे हुए कपड़े और बचा–खुचा भोजन इनकी खुशकिस्मती है, मिट्टी के टूटे हुए बर्त्तन इनकी सम्पत्तियाँ है। आवास के अभाव में ये प्रकृति की गोद में जन्म लेते हैं और इनकी निकली हुई हड्डियाँ, पीली आँखें, सूखी खाल, फोड़ेयुक्त पैर और मुरझाए चेहरे, इनके आर्थिक दृष्टि से अपाहिज

होने की पुष्टि करते है। छः दशकों की विकास–यात्रा के बावजूद गरीबी का भूत और वर्त्तमान एक ही धरातल पर खड़ा है अर्थात् उनमें कोई सुधार नहीं आ सका है। सच तो यह है कि गरीबी के पंख पिछले काल में और भी अधिक फैल गये हैं।

भले ही भारत को विश्व के निर्धनतम राष्ट्रों की श्रेणी में पंक्तिबद्ध न किया जाय, लेकिन यह सच है कि भारत की अधिकांश जनसंख्या आज भी पद दलित जिन्दगी बसर कर रही है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों जैसे– बी.एस. मिन्हास, प्रो० पी. डी. ओझा, पी. के. बर्द्धन, प्रो० डाँडेकर एवं रथ, प्रो० डी.टी. लकड़ावाला, प्रो० अभिजीत सेन, योजना आयोग तथा विश्व बैंक द्वारा किए गए सर्वेक्षण देश में व्यापक दरिद्रता का संकेत देते हैं। यद्यपि इन लोगों ने निर्धनता के अलग–अलग मापदण्ड प्रस्तुत किए हैं लेकिन किसी भी मापदण्ड से मापने पर पता चलता है कि भारत में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता का व्यापक साम्राज्य विद्यमान है। सभी राज्यों में गरीबी का फैलाव एवं गहनता एक समान नहीं है। इसके साथ ही साथ पूरे आयोजन काल के दौरान प्रति व्यक्ति आय के रूप में अंतर्क्षेत्रीय असमानताओं के बढ़ने के प्रमाण भी मिलते हैं। इस प्रकार जब कि गरीबी एक अभिशाप है और आय की विषमताएँ एक सामाजिक कलंक है। भारत में आय का वितरण काफी असमान ढंग से हुआ है और यह विषमता घटने की बजाय बढ़ती ही जा रही है। तृतीय विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में आज विकास एवं गरीबी के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो चुकी है। आर्थिक वृद्धि की उच्च दर के बावजूद इन देशों में बेरोजगारी और गरीबी बढ़ी है, विषमताओं का कालचक्र अधिक गहरा हुआ है और जनसंख्या का एक बड़ा भाग आभावों से ग्रसित है। विकासशीलत देशों में विकास की निरंतर दौड़ के बावजूद चीर निर्धनता (Chronic Poverty) व्याप्त है। यह निर्धनता एक नरक के समान है और यह नरक बेहद भयावह है। प्रसन्नता की बात यह है कि आधुनिक विकासवादी अर्थशास्त्रियों ने अब नयी दिशा में सोचना शुरू कर दिया है। उनका मानना है कि आर्थिक कल्याण एवं सामाजिक न्याय, वास्तव में आर्थिक विकास के मूलभूत उद्देश्य है। लोगों ने इस सच्चाई को सहजता से स्वीकार कर लिया है कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद को यदि अधिकतम करना आवश्यक है तो उससे भी कहीं ज्यादा जरूरी यह है कि गरीबी, भूख, बेरोजगारी, विषमता और अन्याय पर चोट किया जाये। अब यह देखना जरूरी नहीं है कि सकल उत्पाद या उपभोग कितना है?बल्कि यह सोचना होगा कि कितने लोग, कितनी मात्रा में और कितना उपभोग करते हैं।

सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री प्रो० महबूब–उल–हक ने ठीक ही कहा है कि ''ऊँची संवृद्धि–दर बढ़ती हुई गरीबी और आर्थिक विस्फोटो के विरूद्ध कोई गारंटी नहीं है। विकास की समस्या को अब, गरीबी के घिनौने रूप पर सोचे–समझे ढंग से प्रहार करने के अर्थ में परिभाषित किया जाना चाहिए। फिर विकास के लक्ष्य को अल्प पोषण, बीमारी, गन्दगी, निरक्षरता, गरीबी, बेरोजगारी और विषमताओं के उत्तरोत्तर दमन के रूप में सोचना होगा।''

गरीबी, बेरोजगारी और आय–विषमताओं तीनों सभी बहने हैं अथवा यह एक दूसरी की जननी है। इस विषम–चक्र को तोड़ने के लिए सशक्त उपाय करने होगें। फिर, निर्धनता के दुष्चक्र पर प्रहार करने के साथ–साथ समृद्धि के दुष्चक्र (Circle of Affluence) पर भी सीधा प्रहार करना होगा अन्यथा, अमीरी गरीबी को मरने नहीं देगी।

भारत में निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए संरचनात्मक सुधारों को लागू किया जाना अति आवश्यक है। विशेष रूप से भूमि–सुधार तथा भूमि का पुनः वितरण जैसे कार्यक्रम इन बुराईयों पर गहरी चोटे कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। फिर हमें रोजगार बढ़ने के उपायों को कारगर बनाना होगा। रोजगार वह सशक्त उपाय है जो गरीबी का कफन ओढ़े लाखों–करोड़ों को राहत प्रदान कर सकता है। परन्तु इसके लिए आवश्यक होगा कि रोजगार को आयोजन का केन्द्र–बिन्दु बनाया जाए और उत्पादन की नीतियाँ इस केन्द्रीय उद्देश्य के इर्द–गिर्द बुनी जाय। किसी भी ऐसी अर्थव्यवस्था में गरीबी उनमूलन का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता जो स्फीतिक दबावों से जकड़ी हुई हो। मुद्रास्फीति अपने स्वभाव से ही आर्थिक विषमताओं को बढ़ाती है और यह गरीब वर्गो की आय को निगल जाती है। इसलिए आवश्यक है कि कठोर और प्रभावी राजकोषीय उपायों द्वारा कालेधन में उत्पन्न उच्च–वर्ग के आर्थिक अतिरेक को समाप्त किया जाए। साथ ही कालाधन, बेनामी सम्पत्ति, कर वंचन एवं तस्करी के विरूद्ध कठोर कदम उठाए जाय। इन सब उपायों के अतिरिक्त ऐसे कार्यक्रमों एवं नीतियों को बनाना होगा जिसकी पहुँच गरीबों एवं आमजनों तक आसानी से हो सके। इन सबसे साथ ही साथ, गरीबों, असहायों एवं अभिवंचितों के लिए बनाए गए सरकारी कार्यक्रमों एवं नीतियों का लाभ, वाास्तविक लाभार्थियों तक पहुँच सके, इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं प्रिंट मिडिया के माध्यम से गरीबी अन्मूलन की नीतियों एवं कर्यक्रमों का प्रचार–प्रसार करना होगा तथा जन–जागरण एवं जन–चेतना पैदा करना होगा। उपरोक्त प्रयासों के द्वारा सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास की संकल्पना को साकार किया जा सकता है तथा गरीबी से निजात पाया जा सकता है। ●

शिक्षा की दशा,
दिशा एवं शिक्षा में सुधार

श्री वीरेन्द्र प्रसाद सिंह

गणित विभाग
अनजबित सिंह कॉलेज, बिक्रमगज (रोहतास)

किसी भी व्यक्ति का जीवन उस समाज से अधिक प्रभावित होता है जहाँ वह रहता है। सामाजिक संस्थाएँ समाजीकरण कर उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं व्यक्तित्व से संबंधित विकास करती है। किन्तु इन संस्थाओं का प्रभाव उसी सीमा तक है जहाँ तक कि उसकी प्रकृति मूल रूप से परिवर्तित हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मनोवृत्ति, रूचि एवं योग्यता होती है जो एक दूसरे से भिन्न होती है। समाज इस विभिन्नता में समन्वय लाने की चेष्टा करता है और शिक्षा के माध्यम से एक ऐसा सामाजिक संगठन बनाता है जिसमें आशा की जाती है कि व्यक्ति उसके अन्तर्गत ही अपना जीवन व्यतीत करेगा। लेकिन बिना शिक्षा के सामाजिक संगठन छिन्न–भिन्न हो जाता है और वह अंधविश्वास, रूढ़िवादिता एवं संकीर्णता का पुतला बनकर रह जाता है, उसकी चिंतन शक्ति नष्ट हो जाती है और वह किसी भी समस्यात्मक प्रश्न पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार करने की स्थिति में नहीं रह जाता।

शिक्षा का उद्देश्य केवल विषयों का ज्ञान करा देना मात्र नहीं अपितु उसका पोषण करना अथवा ऐसी आदतों एवं मनोवृत्तियों का विकास करना भी है जिससे वह भविष्य का अच्छी तरह सामना कर सके। इस संबंध में कुछ विद्वानों ने अपने–अपने विचार निम्न ढंग से दिए हैं जो इस प्रकार हैं।

प्लेटो के अनुसार ''शिक्षा का उद्देश्य शरीर एवं आत्मा में पूर्णता एवं सौंदर्य का विकास करना है।'' अरस्तु के अनुसार ''शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की क्षमताओं, विशेषतः उसकी मानसिक शक्तियों का विकास करना है ताकि वह सर्वोच्च सत्य, सौंदर्य एवं श्रेष्ठता की अनुभूति कर सके।'' एंडरसन के अनुसार ''शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति ऐसी बातें सीखता है जो उसे सामाजिक जीवन के अनुसार स्वयं को समायोजित करने के योग्य बनाती हैं।'' गाँधीजी के शब्दों में ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का विकास। शिक्षा का उद्देश्य शिशु में उन मौलिक, बौद्धिक और नैतिक दिशाओं को जाग्रत व विकसित करना है जो उसके संपूर्ण समाज और पर्यावरण के लिए आवश्यक है, जिसके लिए वह पूर्व निर्दिष्ट है।'' ''शिक्षा मानव समाज के वयस्क सदस्यों द्वारा आने वाली पीढ़ियों के स्वरूप को अपने जीवन आदर्शो के अनुरूप ढालने का प्रयास है।'' ''शिक्षा का अर्थ उसे ग्रहण करने वाले में उन आदतों एवं दृष्टिकोण का विकास करना है, जिसके द्वारा वह भविष्य का सफतापूर्वक सामना कर सके।

इस प्रकार शिक्षा के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व संकुचित हो जाता है। अज्ञानता अंधकार के समान है, विष्णु पुराण (6.5, 62) में कहा गया है कि 'अंधतम इवाजानम' अज्ञानी मनुष्य के जीवन अंधकारमय है, अतः विद्या तथा ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित होता है। विद्या माता की तरह मनुष्य की रक्षा करती है, पिता के सदृश शुभ कार्य में सन्नद्ध करती है। सभी दुखों को समाप्त करती है और

प्रसन्नता प्रदान करती है। इस प्रकार समस्त लौकिक सुखों की प्राप्ति विद्या के माध्यम से ही संभव मानी गई है। इसी के माध्यम से मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है। इसीलिए विद्याहीन मनुष्य को पशुवत कहा गया है।

प्रत्येक दशा में समाज शिक्षा द्वारा प्रभावित होता है और शिक्षा का यह कार्य विद्यालयों द्वारा होता है। जिसे समाज अपने मानकों द्वारा प्रभावित करता रहता है। सामाजिक मानक वह आधारशिला है जिस पर शिक्षा और शिक्षण संस्थान खड़े होते हैं। समाज विद्यालय के माध्यम से अपने आदर्शों तथा मान्यताओं को भविष्य की पीढ़ी को सौंपता हुआ अपने को कायम रखता है।

शिक्षा व्यक्ति को पशुता से उठाकर मानव बनाने, असुन्दरता से सुन्दरता, असत्य से सत्य, असुरी प्रवृत्ति से दैवी प्रवृत्ति की ओर ले जाने की प्रेरणा तथा क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा चाहे देशी हो या विदेशी, भारतीय हो या अंग्रेजी, मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सही मार्गदर्शन करती है। शिक्षा आधारभूत रूप से व्यावहारिक दर्शन होने के कारण आवश्यक रूप से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्पर्श करती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समय–समय पर भारतीय शिक्षा प्रणाली के दोषों पर विचार करे हुए आयोगों की स्थापना की गई है। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनायी गई, जिसमें शैक्षिक प्रणाली से विभेदों को दूर करने, स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने, शिक्षा व्यवस्था के साथ स्थानीय समुदाय को संबद्ध करने, महिलाओं की समानता के आदर्श को साकार करने हेतु संपूर्ण शिक्षा प्रणाली का पुनर्भिमुखीकरण, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं शैक्षिक रूप से अन्य अलाभान्वित वर्गो, अल्पसंख्यकों, मानसिक एवं शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों एवं पिछड़े क्षेत्रों के लिए विशेष व्यवस्थाओं पर बल दिया गया।

भारतीय समाज में शिक्षा के विकास हेतु प्रयास किए गए फिर भी आज भारतीय शिक्षा प्रणाली में जो सुधार होने चाहिए थे, वे नहीं हो पाए हैं। स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में छात्र अनुपात के अनुसार अध्यापकों की कमी बनी हुई है। कुछ विश्वविद्यालयों में 25–30 वर्षो से तदर्थ शिक्षकों से अध्यापन का कार्य लिया जा रहा है किन्तु विश्वविद्यालय तथा राज्य सरकार की अपेक्षा एवं उदासीनता के कारण ये शिक्षक अपनी सेवा एवं उम्र के अंतिम पड़ाव पर आज भी उपेक्षित है। कहीं–कहीं प्राथमिक विद्यालय खोल तो दिए गए हैं परन्तु शिक्षकों की कमी के कारण उनमें से कई बंद पड़े हैं तो कहीं एक ही अध्यापक विद्यालय चला रहे हैं। व्यावसायिक पाठ्यक्रम न होने के कारण सैकड़ों–हजारों युवक बेरोजगार पड़े हैं, परीक्षा प्रणाली वर्षो पुरानी बनी हुई है। विद्यार्थियों में

अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है, शिक्षकों में असंतोष व्याप्त है और सामाजिक मानकों की अवमानना हो रही है, जिसके कारण विद्यार्थियों में हिंसा की भावना तथा चारित्रिक पतन होता जा रहा है। स्कूल–कॉलजों में हड़ताल, धरना प्रदर्शन, तोड़–फोड़ आम बात हो गई है महाविद्यालयों में छात्र अनुपात के अनुसार पर्याप्त कमरों का अभाव है। ऐसे वातावरण में किस तरह से समाज में शिक्षा का विकास हो सकेगा?

हमारी देश की शिक्षा आजादी से पहले विश्व में डंका बजा रही थी। उस समय विदेशों से पढ़ने के लिए विद्यार्थी आया करते थे। आज वह नहीं हो रहा है। इसके लिए एक स्पष्ट और स्थाई शिक्षा नीति बनें जिसमें उच्च कोटि की शिक्षा देने की व्यवस्था हो जो जीवन उपयोगी और रोजगाररत हो।

हमारा देश आजादी के पहले उच्च शिक्षा में सर्वश्रेष्ठ था। जिसमें नालंदा, विक्रमशिला, तक्षशिला और उज्जैन जैसे उच्च शिक्षण संस्थान थे। दुनिया को अपनी समृद्धि द्वारा सीखने का मार्ग दिखाते थे। कुछ विषयों जैसे– गणित, विज्ञान, कृषि, खनन एवं चिकित्सा आदि के क्षेत्रों में हमारा देश दुनिया की नयी–नयी खोजों द्वारा जीने की नयी विद्या दी। ऐसे आज भी भारत प्रबन्धक, वैज्ञानिक, इंजीनियर एवं चिकित्सक दुनियाँ भर में भारत के नाम को आगे रखने में सक्षम हुए हैं, लेकिन भारतीय उच्च शिक्षा एवं शोध के क्षेत्रों में शिक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने में सफल साबित नहीं हुए। हमारा देश अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी इस गरीमा को खोता जा रहा है। जहाँ अमेरिका, कनाडा, इंगलैंड एवं अन्य युरोपीय देशों के उच्च शिक्षा के अनेक केन्द्र विश्व स्तर पर अपनी वरीयता कायम किये हुए हैं। भारत इस मामले में नीचे नजर आ रहा है। अभी विश्व स्तरीय सर्वे में एक बात सामने आयी है, कि दुनियाँ के सर्वश्रेष्ठ तीन सौ विश्वविद्यालयों में एक भी भारतीय संस्थान शामिल नहीं है। जबकि चीन सहित कई विकासशील देशों के प्रमुख विश्वविद्यालयों ने अपनी जगह बना ली है।

जहाँ तक उच्च शिक्षा की बात करें तो केवल आईआईटी, आईआईएम और कानून सम्बन्धित विश्वविद्यालय जैसे उच्च स्तरीय संस्थान ही भारतीय शिक्षा को दुनिया भर में प्रतिष्ठा दिला रहे हैं। बाकी संस्थान की गुणवता पर अनेक सवाल खड़े हैं। जो उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मानकों पर खड़ा उतरने के लिए पर बहुत सारे बदलाव की जरूरत है। हमारे देश में शिक्षा के प्रति मध्यम वर्ग के छात्रों का रूझाान तेजी से बढ़ा है। अब सरकार ने शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों को भी पूँजी निवेश करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है, लेकिन शिक्षा कि गुणवत्ता की ओर ध्यान नहीं दे रही है। भारतीय विश्वविद्यालयों में योग्य शिक्षकों की भारी कमी है। इसके कारण शिक्षा एवं शोध का स्तर गिरते जा रहा है। कुछ योग्य शिक्षक ही घुम–घुम कर बड़े–बड़े संस्थानों के शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा कर रहें हैं।

भारत को अगर शिक्षा के क्षेत्र में खोई हुई गरिमा हासिल करना है और विश्व के मानचित्र में श्रेष्ठता स्थापित करना है तो विदेशों में उच्च शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में काम कर रहे लोगों को भारत की ओर आकर्षित करना होगा। और सरकार को ऐसे ही कई और प्रयास करने होगें। इस ओर आकर्षित करने के लिए उनको बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की पैकेज से ज्यादा लाभ देने होंगें तभी योग्य शिक्षाविद् शिक्षण एवं शोध के क्षेत्र में आगे होंगें। एक समय था हमारे देश में विदेशी युवा शिक्षा के लिए बड़ी संख्या में आया करते थे। आज हमें विदेशों में किये गये शोध पर निर्भर होना पड़ रहा है। हम ऐसी व्यवस्था लागू करें, कि हमारे देश में विदेशी युवाओं को भी उच्च शिक्षा एंव शोध करने के लिए आना पड़े और पहले जैसी वातावरण बने। भारतीय विश्वविद्यालयों में हो रहे शोधों की गुणवता को भी काफी सुधारने की जरूरत है। जिससे भविष्य में योग्य शिक्षाविदों के लिए भारत को विदेशों से किये

हिन्दी पत्रकारिता
– तब और अब

रामकृष्ण यादव

अंग्रेजी हुकूमत के समय उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में भारत में हिन्दी पत्रकारिता की नींव पड़ी थी। तब से लेकर आज तक हिन्दी पत्रकारिता में काफी परिवर्त्तन हुआ है। प्रारम्भिक काल में हिन्दी पत्रकारिता जहाँ जन सरोकार से जुड़ी थी वहीं कालान्तर में उसमें काफी बदलाव आया। देशभक्ति, राष्ट्रनिर्माण और सामाजिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली हिन्दी पत्रकारिता परवर्ती काल में व्यवसायिकता की ओर उन्मुख हो गयी। आज हिन्दी पत्रकारिता अपने नए स्वरूव व तेवर को लेकर चर्चा में है। हिन्दी पत्रकारिता में आये इन बदलावों और उसके प्रवृत्तियों पर एक दृष्टि डालने से पूर्व भारत में पत्रकारिता की शुरूआत पर एक नजर डालना समीचीन होगा।

भारत का पहला अखबार जेम्स अगस्टस हिकी का 'बेंगाल गजट' या कलकत्ता जेनरल 'जेनरल एडवटाइजर' अंग्रेजी साप्ताहिक था, जो 29 जनवरी, 1780 को कोलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। हिकी ब्रिटिश नागरिक थे। उनका चार पृष्ठों का यह अखबार तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के लिए सरदर्द बन गया था। जून 1781 में हेसिटन्न्स ने हिकी को गिरफ्तार करने का आदेश जारी किया। आदेश मिलने के तुरंत बाद हिकी को सशस्त्र बल ने घेर लिया। बावजूद इसके हिकी भयभीत नहीं हुए। उन्हों‍न गिरफ्तारी का डटकर विरोध किया। उन्होंने साहसपूर्वक कहा कि आप मुझे इस तरह घसीट कर नहीं ले जा सकते। उन्होंने गिरफ्तारी का वारंट भी दिखाने को कहा, पर पुलिस ने उन्हें बलपूर्वक गिरफ्तार कर लिया। अगले दिन उच्चतम न्यायालय ने गवर्नर जनरल द्वारा लगाये गए आरोप को लेकर जवाब–तलब किया। जब वे अपनी जमानत के लिए 80 हजार रुपये नहीं दे सके तो जेल भेज दिया गया। अगले वर्ष हिकी को एक साल जेल की सजा हुई और दो हजार रुपये का जुर्माना लगा। हिकी के जेल जाने के बाद भी कुछ समय तक उनका पत्र निकलता रहा पर मार्च 1782 में एक आदेश द्वारा उनके प्रेस को जब्त कर लिया गया। इस प्रकार भारत का पहला समाचार–पत्र बंद हो गया।

30 मई, 1826 को युगल किशोर शुकुल ने हिन्दी पत्रकारिता का युगारंभ साप्ताहिक 'उदन्त मार्त्तण्ड' के संपादन–प्रकाशन के साथ किया। कोलकत्ते के कोलूटोना नामक मुहल्ले के 37 नम्बर अमड़ताला गली से यह पत्र प्रत्येक सप्ताह मंगलवार को प्रकाशित होने लगा। शुकुल ने इस पत्र को 'हिन्दुस्तानियों के हित हेतु' निकाला था। शुकुलजी को उम्मीद थी कि सरकार तत्कालीन उर्दू पत्र 'जाम–ए–जहाँनुमा' और बंगला पत्र 'समाचार दर्पण' की भाँति उन्हें आर्थिक सहायत देगी। पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी लिखते हैं कि ''इसी भरोसे युगल किशोर जी ने भी 'उदन्त मार्त्तण्ड' निकाल दिया था। परन्तु वह न मिली और किसी धनी मानी से सहायता मिलने की आशा न रही, तब यह मार्त्तण्ड अस्ताचल को चल गया।

इस प्रकार हिन्दी का पहला अखबार सरकार की दोहरी नीति और उपेक्षा का शिकार हो गया। बावजूद इसके इस पत्र ने अल्पावधि

....

में ही अनाचार, अनैतिकता और अर्थ–लिप्सा पर प्रहार करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। साथ ही समाज के सुख दुःख में भागीदारी करते हुए सामाजिक सरोकारों को महत्व प्रदान किया।

'उदन्त मार्त्तण्ड' के बाद 10 मई 1829 को प्रकाशित 'बंगदूत' का उद्देश्य हिन्दी भाषियों को जागृत करना था। समाज सुधार आंदोलनों के पुरोधा राजाराम मोहन राय ने इस पत्र के माध्यम से यूरोप के ज्ञान–विज्ञान से पाठकों को परिचित कराने का कार्य किया। वाराणसी से प्रकाशित साप्ताहिक 'बनारस अखबार' (1845) का उद्देश्य भी लोगों को जागरूक करना ही रहा। अलबत्ता हिन्दी के प्रथम दैनिक समाचार–पत्र 'समाचार सुधावर्षण' (1854) ने जातीय स्वाभिमान को जगाने का प्रयास किया। एक लेख में पत्र के सम्पादक श्याम सुन्दर ने लिखा कि ''हाल ही में अंग्रेजों ने हमारे धर्म को नष्ट करने का प्रयास किया। अतः ईश्वर उन पर क्रुद्ध है। ऐसा आभास मिलता है कि ब्रिटिश साम्राज्य का अब अंत आ गया है। जब दास मालिक को जवाब देने लगता है तब समझ लो कि मालिक का अंत निकट है।'' अंग्रजों के विरुद्ध विरोध के इस स्वर को अजीमुल्ला खाँ ने अपने पत्र 'पयामे आजादी' (1857) में बुलंद किया। इस पत्र ने अंग्रेजों को खासा आतंकित किया और उन्होंने बलपूर्वक बंद करा दिया। ब्रिटिश सरकार ने 13 जून, 1857 को प्रेस संबंधी एक कानून (गैगिंग एक्ट) बनाकर पत्रों की स्वतंत्रता पर पाबंदी लगा दी। इसके बाद भी कई उल्लेखनीय पत्र निकले जिसमें 'सूरज प्रकाश', 'प्रजाहित', 'धर्मप्रकाश', 'ज्ञान–प्रदायिनी', 'लोकमत', 'तत्व बोधिनी पत्रिका' उल्लेखनीय हैं। इन पत्रों ने सामाजिक सुधार पर विशेष रूप से बल दिय और शासन की कारगुजारियों पर थोड़ी–बहुत रोशनी डाली।

हिन्दी पत्रकारिता 1867–1900 ई० तक भारतेंदु के व्यक्तित्व से प्रभावित रही। उन्होंने खड़ी बोली गद्य को जहाँ नवीन रूप दिया वहीं हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 19वीं सदी के छठें दशक तक भारत में विदेशी विचारधारा अपना पैर जमा चुकी थी। विदेशी विचार से लोग अत्यंत प्रभावित थे। अंग्रेजी शिक्षा फल–फूल रही थी। ऐसी शिक्षा से परम्परावादी विचाचधरा का लोप हो रहा था। समाज के अनेक सुधारवादी संगठन समलन ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी, देवबंद, अलीगढ़ आन्दोलन तथा स्थानीय और जातीय आधार पर बनी समाज सुधारवादी संस्थाएँ जन्म ले रही थी। इन संस्थाओं के गठन में शिक्षित व्यक्तियों का अहम् रोल रहा। इन्हीं शिक्षित व्यक्तियों ने हिन्दी पत्रकारिता को नई राह दिखायी। भारतेंदु भी उनमें से एक थे।

भारतेंदु ने 15 अगस्त, 1867 को काशी से 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन कर हिंदी पत्रिका के नए युग की शुरूआत की थी। इसके बाद उन्होंने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (1867), 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' (1874), 'नवोदिता हरिश्चंद्र चन्द्रिका' (1884) निकाली। इन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से उन्हों‍ंन राष्ट्रीयता एवं सामाजिक चेतना को उदबुद्ध कर सांस्कृतिक जागरण का मार्ग प्रशस्त किया। उनके इस जागरण को बालकृष्ण भट्ट के 'हिंदी प्रदीप' (1877) ने विस्तृत फलक प्रदान की। भट्ट जी एक निर्भीक पत्रकार थे। उनमें राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी थी। वे तीखे शब्दों में नौकरशाहों पर प्रहार करते थे। उनकी बेबाक शैली ब्रिटिश सरकार को खटकती थी।

भारतेंदु मंडल के एक अन्य सदस्य प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' (1833) निकाला और 'हिंदी हिन्दू हिन्दुस्तान' का नारा दिया। वे भी भट्ट जी की भांति राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए प्रतिबद्ध थे। इस युग के अन्य प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं भरत मिश्र (1878), सारसुधानिधि (1879), उचित वक्ता (1880), आनंद कादम्बिनी (1881), पीयूष प्रवाह (1883), हिन्दोस्तान (1885), हिंदी बंगासी (1890), साहित्य सुधानिधि (1893), नगरी नीरद (1893), नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1896) में भी राष्ट्रीयता का स्वर कमोबेश गुजयमान रहा।

उन्नीसवीं सदी का अंत होते–होते हवा बदलने लगी। द्विवेदी युग के पत्रकारों ने राष्ट्रीयता को सर्वोपरि स्थान दिया। राजभक्ति को तिलांजलि दे दी। भारतेंदु द्वारा प्रारंभ की गयी स्वदेशी चेतना इस युग में प्रखर हुई। इस युग के महावीर प्रसाद द्विवेदी, लोकमान्य तिलक, मदन मोहन मालवीय, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, शारदा चरण मिश्र, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु परड़कर, मूलचंद अग्रवाल, गणेश शंकर विद्यार्थी, दशरथ प्रसाद द्विवेदी, माधवराव सप्रे जैसे समर्पित पत्रकारों ने अपने पत्रों के माध्यम से हिन्दी प्रेम और देशभक्ति को परवान चढ़ाया। इससे भारत वर्ष में चतुर्दिक जागरण की लहर दौड़ पड़ी।

अंग्रेजों की दमन नीतियों के प्रति इस युग में उत्तरोत्तर विरोध का तेवर तल्ख हो गया। मराठी 'केसरी' के विभिन्न अवतरणों एवं लेखों के हिन्दी अनुवाद को छापकर पत्र ने उग्र विचारधारा को पोषण किया। 'सरकार की दमन नीतियों और भारतमाता' तथा 'कालापानी' इन दो सम्पादकीय टिप्पणियों और 'बाम्ब गोलयाचें रहस्य' एवं देशचा दुदैव' के हिन्दी अनुवाद प्रकाशति होते ही 23 अगस्त, 1908 को सप्रे एवं नागपुर के 'देशसेवक' के संपादक कोल्हटकर को भारतीय दंड विधान की धारा 124 के अर्न्तगत गिरफ्तार कर लिया

गया। 1909 में राजद्रोह के मुकदमे के कारण नागपुर से सप्रे द्वारा प्रकाशित हिन्दी 'केसरी' बंद हो गया। किन्तु परवर्ती काल में प्रकाशित 'कर्मयोगी', 'मर्यादा', 'प्रताप', 'प्रभा', 'राजभक्त', 'पाटलिपुत्र', 'नवजीवन', 'स्वदेश', 'कर्मवीर' आदि पत्र–पत्रिकाओं ने अंग्रेजी दमन नीतियों का विरोध और देशभक्ति का अलख जगाये रखा।

इस युग के पत्रों ने साहित्य, ज्ञान–विज्ञान, आर्थिकी, कृषि, उद्योग आदि विषयों को भी महत्व दिया और इन विषयों पर आधारित कई उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक आलेख प्रकाशित किये। पत्रों ने सामाजिक बुराइयों पर भी चोट की। बाल–विवाह, जनसंख्या वृद्धि, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति, छुआछुत तथा अंधविश्वासों पर हर प्रकार से कुठाराघात किये।

सन् 1920–1947 तक का काल भारतीय राजनीति का अत्यंत उथल–पुथल का काल है। इस काल में भारतीय जननायक के रूप में महात्मा गाँधी का अभ्युदय हुआ। उनके व्यक्तित्व से हिन्दी पत्रकारिता अत्यंत प्रभावित हुई। अधिकांश पत्र–पत्रिकाओं ने उनके दृष्टिकोण एवं विचारों को प्रमुखता दी। गांधीजी स्वयं पत्रकार थे। वे पत्रकारिता को वैचारिक क्रांति का एक सशक्त माध्यम मानते थे। उन्होंने पत्रों के माध्यम से अपने विचारों को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। बालगंगाधर तिलक की स्वराज की मांग को उन्होंने परवान चढ़ाया और अंजाम तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन् 1920 हिन्दी पत्रकारिता की उन्नयन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस वर्ष तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ दैनिक पत्र 'आज' का प्रकाशन 5 सितम्बर को काशी से हुआ। काशी के प्रसिद्ध देशभक्त बाबु शिव प्रसाद गुप्त के विश्वभ्रमण से लौटने के बाद 'लन्दन टाइम्स' जैसा सयंत एवं सुरुचिपूर्ण पतर हिन्दी में प्रकाशित करने की योजना का यह प्रतिफलन था। जिस दिन 'आज' का प्रकाशन हुआ उसी दिन कोलकाता से दैनिक पत्र 'स्वतंत्र' का भी उदय हुआ। इस पत्र ने भी राष्ट्रीयता एवं स्वतंत्रता को महत्व दिया। तत्कालीन 'वर्त्तमान' (कानपुर) का स्वर राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का ही रहा। अलबत्ता उग्र राष्ट्रवाद को हवा देने वाले पत्रों में 'अर्जुन' (दिल्ली) प्रमुख पत्र रहा। इसके उग्र तेवर से खफा ब्रिटिश सरकार ने इस पर कानूनी शिकंजा कसने की योजना बनायी। फलतः 1938 में रातोंरात इस पत्र ने कानूनी शिकंजे से बचने के लिए अपना नामांतरण 'वीर अर्जुन' के रूप में कर दिया। इन्द्र विद्यावाचस्पति के संपादन में यह पत्र खूब चमका। तत्कालीन पत्र 'हिंदी मिलाप', साप्ताहिक 'सैनिक', 'भारत', 'लोकमान्य', 'दैनिक लोकमत', 'पंजाब केसरी', 'जागरण', 'नवभारत', 'विश्वबंधु', 'शक्ति', 'हिंदुस्तान', 'नवशक्ति', 'राष्ट्रवाणी', 'जयहिन्द', 'आर्यावर्त', 'सन्मार्ग' भी राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत रहे। इन सभी पत्रों ने राष्ट्रीय विचारों को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गाँधीजी का हिंदी पत्र 'हरिजन सेवक' इस युग का अविस्मरणीय पत्र था। इसमें राष्ट्र की आत्मा प्रतिध्वनित होती थी। इसमें प्रकाशित लेखों को सभी अखबारों में उद्धृत किया जाता था।

इस युग में राजनीतिक और साहित्यिक अलग–अलग हो गयी थी। बावजूद इसके साहित्यिक पत्रों ने भी राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। हिन्दी को समृद्ध करने एवं समाज को नयी दिशा देने में साहित्यिक पत्रों का उल्लेखनीय योगदान रहा। 1923 में कोलकता से प्रकाशित 'मतवाला' अपने समय का काफी चर्चित साहित्यिक पत्र था। हास्य–व्यंग्य के क्षेत्र में इस पत्र ने क्रांति कर दी। 'निराला' और 'उग्र' इस पत्र के माध्यम से खूब चमके। 1927 में प्रकाशित 'वीणा' भी एक श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका थी। 1930 में काशी से प्रकाशित प्रेमचंद का 'हंस' इलाहाबाद से प्रकाशित 'चाँद', लखनऊ से प्रकाशित 'माधुरी', 'सुधा' भी उच्च स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाएँ थीं। हिन्दी कहानी को इन पत्रिकाओं ने नयी ऊँचाई दी।

इस युग में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पत्र भी प्रकाशित हुए। इन पत्रों ने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किये और धार्मिक विचारों को प्रश्रय दिये। सामाजिक कुरीतियों पर वोट करने वाला 'हिन्दू पंच' (कोलकता) और धार्मिक विचारों को प्रमुखता देने वाला 'कल्याण' (गोरखपुर) तत्कालीन सामाजिक–धार्मिक पत्रों में शीर्षस्थ थे।

1947–2000 का युग भारतीय पत्रकारिता का उत्कर्ष का युग है। इस युग में भारत ने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर स्वाधीनता की सुखद एवं स्फूर्तिदायक सांस ली। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि इस युग में हिन्दी पत्रकारिता ने अभूतपूर्व तथा बहुमुखी प्रगति की। नव्य, भव्य, गरिमापूर्ण भारत को विश्वमंच पर सुप्रतिष्ठित करने का कार्य इस युग के पत्र और पत्रकारों ने किया।

सन् 1947 में अवतरित 'नवभारत टाइम्स', 'नई दुनिया', 'प्रदीप', 'नवजीवन', 'स्वतंत्र भारत', 'दैनिक जागरण', 'सन्मार्ग' आदि दैनिक पत्रों ने नए भारत के अवतरण और उत्कर्ष हेतु मार्ग प्रशस्त किया। एक ओर बंग प्रान्त से 'विश्व मित्र', 'नया समाज', 'ज्ञानोदय', ' मध्यप्रदेश से ', 'नया जमाना', 'नयी दुनिया', 'मंगल प्रभात', 'नव प्रभात', 'आजाद हिन्द', 'स्वतंत्र भारत (उज्जैन)', 'अपना राज', 'हित चिन्तक', 'देश बन्धु', 'नव भारत', 'नवीन दुनिया' राजस्थान से 'अमर

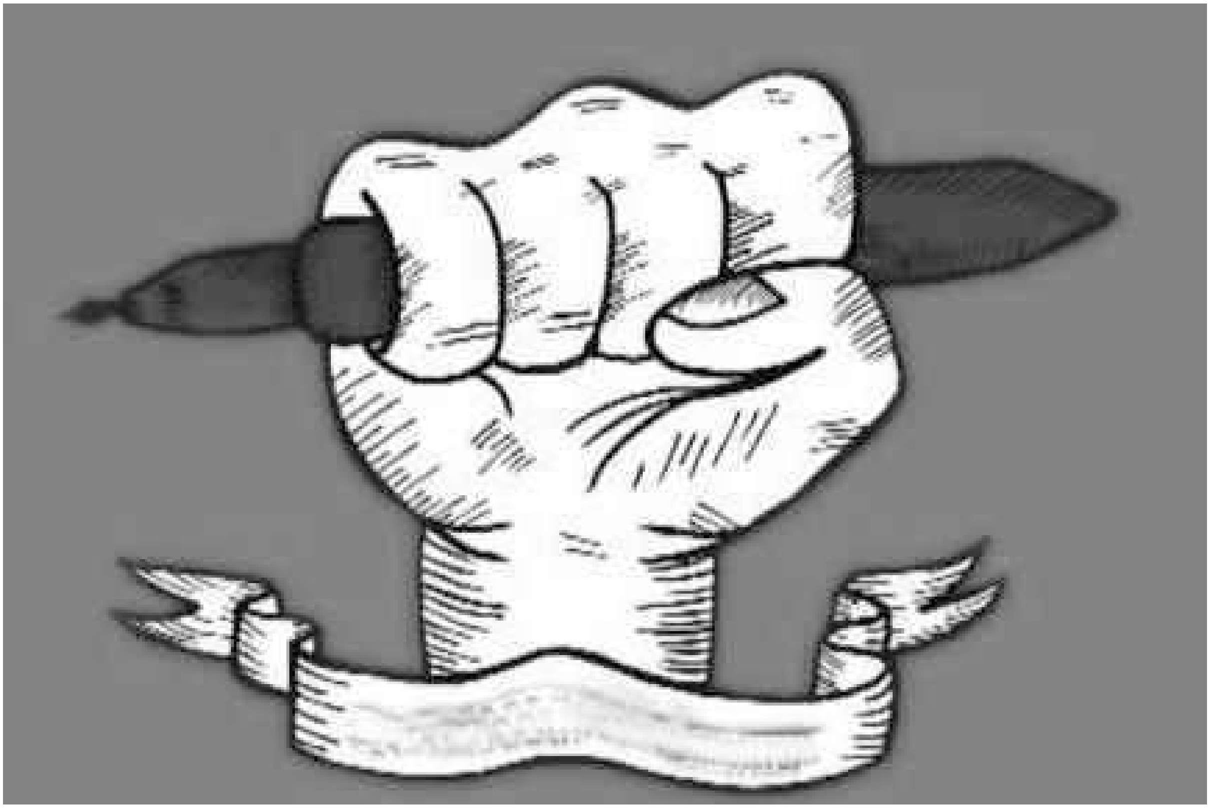

ज्येति', 'पंद्रह अगस्त', 'स्वतंत्र भारत', 'नवयुग', 'लोकजीवन', 'जय हिन्द', 'लोकमत', 'लोकराज', 'राष्ट्रदूत' आदि पत्रों ने अपनी समर्पित भावना से जनतंत्र की स्थापना में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया तो दूसरी ओर बिहार से 'जनशक्ति', 'नवीर भारत', 'जनता', 'पंचायत राज', 'राष्ट्र सन्देश' हिमाचल से 'प्रजामित्र', 'सुधा', 'हिमाचल संदेश', 'लोकतंत्र', 'भावना' पंजाब से 'वीर प्रताप', 'हिन्दी मिलाप', 'पंजाब केशरी' और महाराष्ट्र से 'उजाला', 'दैनिक लोकमान्य ', 'दैनिक विश्वमित्र', 'युगाधर्म' आदि पत्रों ने राष्ट्र निर्माता को एक नयी दिशा दी। राजधानी से प्रकाशित 'हिन्दुस्तान', 'नवभारत टाइम्स', 'वीर अर्जुन', 'जनयुग' आदि विभिन्न पत्रों ने नूतन भारत के निर्माण हेतु अपने को सर्वतः समर्पित कर दिया।

आजादी के कुछ समय बाद सामजिक मूल्यों में गिरावट आने लगी। समाज में झूठ, फरेब, बेईमानी, धोखा, जालसाजी जैसे कृत्य अपना पैर जमाने लगे। हिन्दी पत्रकारों ने ऐसे कृत्यों पर जमकर प्रहार किये और तल्ख टिप्पणियाँ की। खासकर 'सप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने अपनी सशक्त टिप्पणियों द्वारा हिन्दी पत्रकारिता का सिर ऊँचा किया। 'हममें चरित्र बल कल आएगा' (20 जून, 1954), 'यह कैसा धर्म', (13 अक्टूबर, 1958) 'राष्ट्रीय चरित्र का अभाव' (13 अगस्त 1961), 'कौन कहता है कि रावण मर गया?' (7 अक्टूबर 1962), भ्रष्टाचार का चक्रव्यूह' (23 फरवरी, 1964) आदि सम्पादकीय टिप्पणियों द्वारा देश में व्याप्त विकृतियों को मिटाने का रचनात्मक कार्य किया।

स्वतंत्रता के बाद समाज में परिवर्तन के साथ–साथ हिन्दी पत्रकारिता में भी बदलाव आया। आजादी के पूर्व पत्रकारिता मिशन के रूप में कार्य कर रही है। पत्रकारों का उद्देश्य महज सेवा करना था। पर आजादी के बाद हिन्दी पत्रकारिता उत्तरोत्तर व्यवसायिक होती गयी।

21वीं सदी के प्रारम्भ में कंप्यूटरों की शुरू हुई नेटवर्किंग सर्विस ने एक नई संचार क्रांति को जन्म दिया। कंम्प्यूटर, स्कैनर, प्रिंटर व डिजिटल कैमरों के संयुक्त प्रयोगों ने समाचार पत्रों की पूरी तस्वीर ही बदल दी। नयी तकनीक के फलस्वरूप हिन्दी पत्रों के कस्बाई एवं क्षेत्रीय संस्करण निकलने लगे। समाचार पत्रों के ऑनलाइन संस्करण (ई–संस्करण) और ब्लॉगों की शुरूआत हुई।

वैसे नब्बे के दश में ही सामचार पत्रों में कार्य कर रहे

लोगो ने कंपोज्ड सामग्री को एक्सपोज करके डार्क रूप में सुरक्षित तरीके से निकलने, ब्रोमाइड को विकसित करके और फिर एक अलग रासायनिक घोल में मिलाकर ड्रायर से सूखाने की पुरानी तकनीक को जाते देखा था। उस समय शनैः शनैः समाचार पत्रों के कार्यालयों में इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर सी ओर ट्रोनिक की जगह ले रहे थे। इसमें स्विन प्रेस तकनीक से A4 आकार की स्वेत कागज पर कंपोज्ड और संरक्षित सामग्री टाइप होकर स्वतः निकल जाती थी। एक कागज पर चार, तीन, दो या एक कॉलम में सामाग्री छपकर निकलती थी जिसे कैंची से काटकर टी–स्केल की मदद से अलग–अलग कॉलमों में गोद की सहायता से चिपकाया जाता था। किन्तु अब विज्ञापन एवं सम्पादकीय कार्य के लिए पेपर पार्टनर इनफोरमेशन (PPI) कांटेक्ट मैंनेजमेंट सिस्टम (C.B.S.) तकनीक, पृष्ठ बनाने के लिए क्वार्क सॉफ्टवेयर, डमी असाइनमेंट के लिए क्यू लिंग, प्लेट प्रिंटिंग के लिए रिप, की–बोड के लिए समिट, तस्वीरों की बेहतर प्रोसेसिंग और तेज कार्य के लिए सी.एस–4 तकनीक समाचार पत्राों के अंग बन गए है। कुछ वर्ष पहले तक कागज, कलम, टेप रिकॉर्डर लेकर समाचार संकलन करने वाले पत्रकारों के हाथों में अब लैपटॉप, आइपैड, नोटबुक और टैबलेट आ गए है। वे किसी भी जगह, किसी भी परिस्थितियों में समचार संकलन कर संचार माध्यमों से अपने कार्यालय में भेज सकते है।

पत्रों में प्रिंटिंग में आये बदलाव के साथ अंतर्वस्तु (कंटेंट) में भी परिवर्त्तन दिख रहा है। खेल, राजनीति, कला, संस्कृति, पर्यावरण, महिला, बाल विकास, कृषि, विज्ञान, फिल्म आदि अनेकानेक विषयों के विविध पहलुओं को पत्रों द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। अब पत्रों के शीर्षक महज राजनीतिक, प्रशासनिक या आर्थिक जगत् की उठापटक तक ही सीमित नहीं है। खेल, विज्ञान, आदि से जुड़ी खबरें भी पत्रों की सुर्खियाँ बन रही है।

हालाँकि यह जरूर हुआ है कि पत्रकारिता का दायरा बढ़ा है। उसकी महत्ता बढ़ी है। उसका प्रभाव व्यापक हुआ है। पर पत्रकारिता के मूल्यों में गिरावट आई है। अर्थलिप्सा ने पत्रकारों की नैतिकता को बट्टा लगाया है। 'पेड न्यूज' का चलन बढ़ रहा है। पैसे लेकर खबरें परोसने की यह नयी प्रवृत्ति पत्रकारिता की साख को झकझोर रही है। मिशन की पत्रकारिता तो पूर्ववर्ती युग में उत्तरार्द्ध में ही दम तोड़ने लगी थी। पूंजीवाद ने हिन्दी पत्रकारिता को पूरी तरह अपने चपेट में ले लिया। समाज के नवनिर्माण में और राष्ट्रनिर्माण में भूमिका निभाने वाली हिन्दी पत्रकारिता का उद्देश्य अब महज धनार्जन हो गया है। मुनाफा कमाने की मची होड़ में खबरें पीछे छूट गयी है। विज्ञापन पर ज्यादा जोर दिया जाने लगा है। समाचार–पत्रों की इस नीति का उपयोग राज्यों की सरकारे अपने हित में कर रही है। विज्ञापन देकर मनमाफिक खबरें प्रकाशित कराने और सरकार विरोधी खबरों को सेंसर करने का अरोप कई बड़े अखबार समूह पर लगे है। बावजूद इसके पत्रकारिता के मूल्य पूरी तरह नष्ट नहीं हुए है। आज भी कई ऐसे पत्रकार है जो पूरी निष्ठा के साथ पत्रकारीय धर्म का पालन कर रहे हैं। कई ऐसे पत्र–समूह भी हैं जो तटस्थता से खबरें परोसते हैं और जन सरकार को तब्ज्जो देते हैं।

चूँकि तकनीक के बदलाव और पूंजीवाद के प्रभाव की वजह से हाल के वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता में नयी प्रवृत्तियां उभरी है। इसमें कुछ नकारात्मक प्रवृतियाँ भी हैं। यही वजह है कि वर्त्तमान पत्रकारिता पर प्रश्न उठाये जा रहे हैं, आलोचनाएँ हो रही है। सम्भव है आने वाले समय में अपेक्षित बदलाव दिखाई पड़े और नए मूल्य प्रतिस्थापित हो जाएँ।●

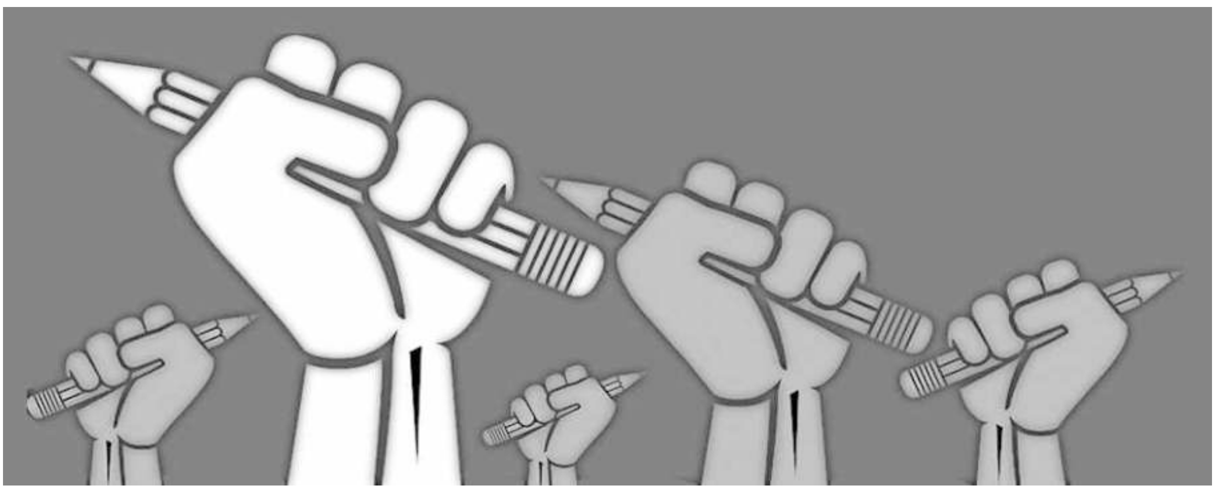

कहानी :

तलाश
मंजिल की

रणजीत कुमार

आई.एस.सी.

रामपुर भारत का एक ऐसा गाँव है, जहाँ प्रकृति की तमाम छटाएँ निवास करती हैं। इन प्राकृतिक छटाओं के बीच राजेश और सपना निवास करते थे। राजेश गाँव के पूर्वी छोर पर रहता था तो सपना पश्चिमी छोर पर। जब इनकी उम्र करीब 14 वर्ष की थी, तब ये गाँव से थोड़ी दूर स्थित शहर में एक ही साथ एक ही विद्यालय में पढने जाया करते थे। रास्ते में जमकर बातें हुआ करती थीं। राजेश को सपना की सुन्दरता पसंद थी तो सपना को राजेश का भोलापन। बस् यही वजह थी कि वे एक–दूसरे को चाहने लगे थे। इनके संबंधों में नयापन आने लगता था। बात यहाँ तक बढ़ चली थी कि राजेश अपनी पढ़ाई से दूर भागकर सारा दिन सारी रात सपना का सपना देखने में बिताने लगा था। फलतः उसके परिवार के लोग काफी परेशान रहने लगे। वे लोग अपने परिवार के इस दीपक की परेशानी को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहते थे। परंतु राजेश, सपना और उसके साथ के संबंध की जानकारी किसी को भी नहीं देना चाहता था। दूसरी तरफ सपना भी परेशान थी तथा यह सोचने पर मजबूर हो रही थी कि बहुत पीछे के लड़के राजेश से पढ़ाई में बहुत आगे निकलते जा रहे हैं और राजेश की पढ़ाई छूटती जा रही है। आखिर कब तक वह वर्ग में अनुपस्थित होता रहेगा।

रात के करीब 2 बजे थे, टेबुल पर लैम्प जल रहा था। राजेश अपने स्टडी रूम में किताब खोलकर पढ़ने बैठा लेकिन एक बार फिर सपना की स्मृतियों में खो गया। उसकी आँखों से मोती समान आँसू टपकने लगे। संयोगवश सपना खिड़की से सबकुछ देख रही थी। राजेश ने सपना की आहट सुनकर उसे कमरे के अंदर बुला लिया। दोनों एक–दूसरे के पास आकर इस प्रकार गले मिले, मानों दुनिया की कोई भी ताकत उन्हें अलग नहीं कर सकती थी। तभी सपना ने राजेश को समझाते हुए कहा राजेश अपनी क्या हालत बना रखी है?क्या तुम भूल गये कि यह इंसान की कमजोरियाँ हैं, जिसके कारण वह दूसरों पर मोहित हो जाता है तथा वह सबकुछ करने को आतुर हो जाता है, जो तुम कर रहे हो?राजेश क्या तुम भूल गये हो कि इंसान तब तक अपनी मंजिल न प्राप्त कर ले, उसे इस प्रकार के सपने कभी नहीं देखने चाहिए, क्योंकि उसका पूरा जीवन उसके मंजिल पर निर्भर करता है। मैं तो तुमसे हमेशा प्यार करती हूँ और भविष्य में भी करती रहूँगी। मेरी मानों, तो तुम मुझे इंजीनियर बनकर दिखाओ और मैं तुम्हें डॉक्टर बनकर दिखाऊँ तभी हमारा प्यार अमर प्रेम कहानी बनेगा, अन्यथा हम और तुम इस दुनिया में रहने के काबिल नहीं है। बस क्या था, राजेश की आँखे खुल गयीं। उसका सारा शरीर एक विशेष ऊर्जा की अनुभूति करने लगा तथा वह अपनी मेहनत, लगन और परीक्षा में अच्छे परिणाम के फलस्वरूप प्रांत के सबसे अच्छे कॉलेज में पढ़ने लगा। इस दौरान उसे अपने गाँव और अपनी सपना को छोड़ना पड़ा। शहर में रहते हुए जब भी उसे सपना की याद आती, तो वह उसकी बातें याद करके अपनी मंजिल पाने के लिए वह सारा प्रयत्न करने लगता, जो उसे करना चाहिए था।

हमारे जीवन का
आदर्श : शाकाहार

इन्द्रसेन कुमार

आहार मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता! आहार जीवों में जीवन का संचार करने वाला तत्व! आहार बिना अस्तित्व संभव नहीं। परंतु, प्रश्न उठता है कि हमारे जीवन का आदर्श क्या हो? शाकाहार या मांसाहार। निस्संदेह, विधाता की सर्वोत्कृष्ट कृति, मानव के जीवन का आदर्श होना चाहिए शाकाहार।

सृष्टि पर मानव का अवतरण हुआ। नील गगन के नीचे फैली अखिल वसुधा उसकी निकेतन थी और प्रकृति देवी ने उसे प्रदान किया विविध कंद–मूल, फल–फूल, ताकि उसका समुचित विकास हो सके। इस तरह मनुपुत्र ने अपने जीवन का आदर्श बनाया शाकाहार को। वही शाकाहार, जिसने उसका संपोषण कर उसे सुविकसित किया। परंतु असंतोषी मानव भला कब शांत रहा?हिंसक पशुओं की देखा–देखी उसने पशु–मांस का आस्वादन किया और .... और मांसाहार मानव की प्रवृत्ति हो गयी। शाकाहारी मानव मांसाहारी के सभ्य मानवों पर सदियों बाद भी हावी है। और, हम मिथ्या तर्क–वितर्क करते हैं कि मांसाहार श्रेयस्कर है, मांसाहार पुष्टिकारक है।

नहीं, नहीं, एकदम नहीं। मांसाहार हमारे जीवन का आदर्श हो ही नहीं सकता। यह तो अमानुषी आचार है। मांसाहार के उच्चारण मात्र से ही मनोमस्तिष्क में घृणित भाव उत्पन्न होने लगते हैं। मांसाहारी निरीह पशु–पक्षियों की हत्या का पाप अपने सर पर ढोता है, उसे मानसिक शांति कभी नहीं मिलती, उसका मन आंधियों का नरक बन जाता है, जिसमें कुप्रवृत्तियाँ एवं दुष्चिंतन जनमते हैं और उसकी पार्थिक काया तो व्याधियों का आवास बन जाती है। कितने आश्चर्य की बात है कि वैज्ञानिक युग में निवास करने वाले हम मानव जानकर भी अनजान बन रहे हैं कि माँस में ऐसे जैविक रसायन होते हैं, जो अत्यन्त ही हानिकारक हैं। मांसाहार कितना हानिकारक है– यदि आप यही जानना चाहते हैं तो पढ़िये उन हजारों गोमांस भक्षी ब्रिटेनवासियों से जिनके बंधु–बांधवों को इस भयावह राक्षस ने ग्रस लिया। कुछ माह पश्चात् शोधों से ज्ञात हुआ कि 'प्रिओना' नामक रोगाणु के संक्रमण से गोमांस विषाक्त हो जाता था। जरा सोचिए, ऐसी बिमारियाँ अन्य पशुओं के माँस में भी तो फैल सकती है। वस्तुतः मांसाहार मानव को मृत्योन्मुख करता है।

वही शाकाहार का उच्चारणमात्र मन प्रसन्न कर देता है। शाकाहारियों के मुखमण्डल पर अप्रतिम संतोष की लकीर खिंची रहती है, उसके मनोमस्तिष्क में दिव्य शांति रहती है और शरीर स्वस्थ रहता है। उसके स्वस्थ मस्तिष्क एवं शांत चित्त में सर्वदा उदात्त भावनाएँ मूर्त्तरूप धारण करने के लिए हिलोरा मारती है। धन्य शाकाहार जो मानव को उत्थान की राह प्रशस्त कर उसे जीवन में सफल बना देता है।

मैं मानता हूँ कि यह आवश्यक नहीं कि एक शाकाहारी व्यक्ति चरित्रवान हो, लकिन चरित्रवान होने के लिए शाकाहारी होना नितांत

बी.एस.सी.,
प्राणी शास्त्र, सम्मान

आवश्यक है। क्या हम पसंद करेगें कि कोई हमें मारकर खा जाए?जब मृत्यु इतनी असुंदर है तो हम निरीह पशुओं का वध क्यों करें?

साहित्य साक्षी है कि लोकोत्तर पुरुषों के जीवन का आदर्श शाकाहार था। महाबली श्री हनुमान जी से आधुनिक काल के स्वामी विवेकानंद तक जितने भी लोकोत्तर पुरुष हुए हैं, सबने शाकाहार का ही व्रत लिया। महात्मा गाँधी ने कहा था– ''मैं मर जाऊँगा, लेकिन माँसाहार नहीं करूँगा।'' विज्ञान को ही अपना आराध्य मानने वाले अमेरिकी लोगों ने भी भारी संख्या में मांसाहार त्याग कर शाकाहार अपनाया है। विश्व के विभिन्न देशों में यह 'शाकाहार क्रांति' जोरों पर है। फिर हमारा तो शताब्दियों से यही मंत्र रहा है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्चन्तु मा काश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

भला हम मासूम जानवरों की हत्या क्यों करें? वह भी अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु। आज जरूरत है ऐसे मानव की, जो तन–मन और संस्कारों से स्वस्थ और सुदृढ़ हो। आज जरूरत है महावीर जैसे साहसियों की, जो प्रकृति में इतने लीन हो जाएँ कि अपनी अपूर्व सुंदरता में नग्न खड़े हो सकें। प्रगति का आधार अहिंसा ही होना चाहिए। हम आज से, अभी से यह निश्चय कर लें कि हम मांसाहार नहीं करेगें और आग की लपटों की तरह सारी दुनिया में प्रेम, अहिंसा और भाईचारे का संदेश गुंजा देगें। यही हमारी संस्कृति की आवाज है। ●

रोहतास जिला की
वनवासी जाति के सामाजिक जीवन का ऐतिहासिक विवेचन

मिथिलेश कुमार

रिसर्च स्कॉलर,
एम.ए. इतिहास

बिहार एवं उड़ीसा प्रान्त संयुक्त रूप से बिहार के नाम से प्रचलित था। उस समय से और कई चरणों में जिला के निर्माण में आदिवासियों की पवित्रता एवं राजा हरिश्चन्द्र के सत्य के प्रतीक रोहतास गढ़ को ध्यान में रखकर ही जिला का नाम रोहतास रखा गया। रोहतास पौराणिक एवं ऐतिहासिक उभय दृष्टियों से काफी महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। रोहतास जिले में कैमूर पहाड़ी पर रोहतास गढ़, बादल गढ़, शेरगढ़ इत्यादि ऐतिहासिक स्थल आज भी अस्तित्व में हैं। हजारों वर्ष पहले सत्य के प्रतीक के रूप में रोहतास को याद किया जाता है। कभी आदिवासी समुदाय को लेकर ईमानदार एवं शांति के रूप में यह स्थल विख्यात रहा, इस गढ़ के माध्यम से गोंडवाना के राजा, मुगलवंश के राजा, आदिवासी राजा, शेरशाह आदि राजाओं ने पौराणिक राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व एवं आदिवासियों के नाम से रोहतास गढ़ को ख्याति प्राप्त हुई। रोहतास जिला राजनीतिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से दो भागों में विभक्त हैं। पहला जी.टी. रोड से दक्षिणी क्षेत्र में असिंचित एवं पठारी क्षेत्र आदिवासियों का निवास माना जाता है। उसी तरह सिंचित क्षेत्र में समान्य जाति का निवास रहा है। इस जिले पर छोटानागपुर एवं शाही राजाओं की छाप दिखाई पड़ती है।

रोहतास जिले के पहाड़ों पर मुख्यतः उराव, खरवार, गोंड, कोल, चेरो पाये जाते हैं। ये सभी जातियाँ नौहट्टा, रोहतास, तिलौथू, सासाराम, शिवसागर, चेनारी में भी रहती हैं।

विश्व के महान् सभ्यताओं की उत्पत्ति वहाँ के आदिवासियों की सामाजिक जीवन से हुई हैं। मिश्र, ग्रीक, रोमन आदि सभी सभ्यताओं के जनक उन भौगोलिक क्षेत्रों के आदिवासी ही थे। भारत की महान् सभ्यता अपने मूल में जनजातीय ही थी।

भारतीय समाज के निर्माण में ग्रामीण एवं शहरी सामाजिक जीवन पर भरपूर योगदान रहा है। यदि यह कहा जाय कि आदिवासियों के समाज एवं संस्कृति की नींव पर ही भारतीय समाज अवलम्बित है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहाँ के आदिवासियों में अधिकांश सीधे, निरक्षर, ईमानदार, मजदूर, गरीब एवं भूमिहीन पाये जाते हैं। इनका सामाजिक जीवन न तो व्यवस्थित था और न आज भी है। हालांकि वर्त्तमान समय में आदिवासी समाज तथा गैर–आदिवासी समाज में ज्यों–ज्यो परिवर्त्तन हो रहा है मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र भी एक–दूसरे से अधिक समीप आते जा रहे हैं। जनजातीय समाज में आज औद्योगिकरण विकास योजनाएँ, शिक्षा इत्यादि के कारण सामाजिक मूल्य बदल रहे हैं। भारत का आदिम समाज भी समकालीन समाज का अभिन्न अंग बनता जा रहा है। सामजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक संस्थाएँ तथा इनसे सम्बन्धित परिस्थितियाँ आती है।

इतिहास भूतकाल की सामाजिक घटनाओं का वर्णन करता है जिसके अभाव में न हम वर्त्तमान को भली–भाँति जान सकते हैं और

न भविष्य को। समकालीन जनजातीय समाजों तथा आधुनिक गैर—जनजातीय समाज को समझने में इतिहास काफी मददगार साबित होता है। भूतकालीन मानवीय अन्तःक्रियाएँ जिनके फलस्वरूप समाज और संस्कृति का विकास हुआ है, को समझने में इतिहास काफी सहायक रहा है।

जनजातीय समाज में प्राचीन काल से ही कुछ—न—कुछ परिवर्त्तन होते रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन परिवर्त्तनों की गति में काफी तीव्रता आयी है। सामाजिक परिवर्त्तन एक समाज की सामाजिक संरचना, संस्थाओं, आदतों या साधनों में पूर्ववर्त्ती अवस्था से भिन्न दिखने वाली अन्तरों को दर्शाता है।

किसी भी समाज को उसकी समग्रता में समझने तथा सामान्यीकरण का समुचित आधार प्राप्त करने के लिए उसके वर्त्तमान स्वरूप तथा संगठन के अध्ययन के साथ ही पूर्व अवस्था से वर्त्तमान तथा उसके ऐतिहासिक विकास—क्रम को समझना अति आवश्यक है। इसी ऐतिहासिक विकास—क्रम को समझने, जानने एवं उसे प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

अगर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नजर डाली जाए तो यहाँ पता चलता है कि शताब्दियों से जंगलों, पहाड़ियों तथा पठारों में रहने के कारण जनजातियाँ दूसरी संस्कृति एवं सभ्यता के सम्पर्क से बहुत दिनों तक अछूती रहीं ।

19वीं शताब्दी के पांचवें दशक में विदेशी ईसाई पादरियों के धर्म व शिक्षा प्रचार एवं सेवाभाव से प्रेरित होकर ये जनजातियाँ ब्रह्म समाज के सम्पर्क में आने लगी। इसके बाद औद्योगीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने के साथ ही उनका सामाजिक सम्बन्ध बढ़ने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय विकास की नीतियों के कार्यान्वयन से भी जनजातीय जीवन में व्यापक परिवर्त्तन का शुभारंभ हुआ।

जनजातीय सामाजिक परिवर्त्तन के लिए संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण की प्रक्रियाएँ प्रमुख रूप से उत्तरदायी रही है। इन सभी तथ्यों से सम्बन्धित विभिन्न कारकों, सामाजिक परिवर्त्तन या सामाजिक सम्पर्क का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। बदलते हुए परिवेश में इसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन काफी समीचीन प्रतीत होता है।

विशेषकर रोहतास की वनवासी जातियों में निम्नलिखित जातियाँ प्रसिद्ध है। रोहतास जिला के जंगलों में उरांव जाति का आधिपत्य शुरू से रहा है। जंगलों में खेती वाली अधिकांश जमीन का मलिकाना हक आज भी उसके पास है और यह

समुदाय शुरू से आज तक कृषि कार्य से जुड़ा हुआ है। कृषि पर आधारित इनकी संस्कृति भी गवाह के रूप में खड़ी है। उरांव जाति को घंगर, महतो नाम से भी जाना जाता है। आज भी भादो माह में इनके नृत्य कार्यक्रम को देखने के लिए गैर आदिवासी जाते है। जिसे बोलचाल की भाषा में बोलते हैं कि घंगर का नृत्य देखकर आ रहा हूँ। उरांव जाति द्रविणायन समूह से आते हैं। इनकी बोली कुडुक होती है, जिसे अपने बीच बोलते हैं। नयी पीढ़ी के लोग अपनी बोली भूलते जा रहे हैं। हिन्दी, भोजपुरी एवं मगही का प्रभाव भी बढ़ते जा रहा है। पुरानी आदिवासी भाषा का संरक्षण नहीं होने से यह भाषा लुप्प होती जा रही है।

इसके अलावे खरवार बिल्कुल हिन्दू परम्परा एवं सभ्यता से जुड़े हुए हैं। इसलिए इनको राजपूत के रूप में भी जाना जाता है। वास्तव में खरवार जाति राजपूत का ही एक गोत्र है। जंगलों में रहने के कारण आधुनिक सभ्यता की रंगीन रोशनी इनके बीच पहुँच नहीं पायी। आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पिछड़े होने के कारण सरकार द्वारा अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल कर ही इनके विकास की संभावना निर्धारित की गई है। खरवार जाति को बलवान समझकर राजा एवं भूमिपति लगान वसूलने का काम करवाते थे। इसके अलावे चेरो, कोल, गोंड आदि जातियाँ भी है। गोंड जनजातियों में भी चार वर्ण हैं– देव गोंड, राज गोंड, सूर्यवंशी गोंड तथा रावणवंशी गोंड। जिसकी चर्चा हम विस्तार से इस प्रस्तावित शोध–प्रबन्ध में करेगें।

पहाड़ों पर बसने वाली इन जातियों में आज भी अंधविश्वास पुरानी परम्पराओं के प्रति मोह एवं अपनी संस्कृति के प्रति आस्था विद्यमान है। संक्षेप में, इनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा।

वनवासी समुदाय अनुशासन एवं सभ्यता के प्रतीक चटाई में बंटे हुए हैं। चटाई के अन्दर अपने समुदाय के सदस्य होते हैं। प्रति वर्ष करमा एवं सरहुल पर्व पर एक साथ बैठते हैं। सामुहिक रूप से इस पर्व का संचालन करते हैं। आपस का झगड़ा कोर्ट–कचहरी में नहीं ले जाकर अपने चटाई के प्रधान के पास शिकायत दर्ज कराते हैं। एक चटाई में प्रमुख प्रधान होता है। सहायक रूप में एक सरदार होता है। सूचना पहुँचाने के लिए एक या दो वारिक का चुनाव किया जाता है। चटाई में शिकायत पूरी जाति को सूचना देकर पंचायत बटोरी जाती है। बारी–बारी से दोनों पक्षों की बात सुनकर प्रधान द्वारा निर्णय सुनाया जाता है जिसको दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं। यदि एक पक्ष स्वीकार नहीं करता है तो उसके परिवार के साथ खान–पान, शादी–विवाह, बोल–चाल पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। जो आज भी कायम है। आज की तिथि में इनका आपसी मुकदमा कोर्ट–कचहरी में नगण्य है।

पारिवारिक जीवन का जहाँ तक प्रश्न है किसी भी घर के स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर कृषि या मजदूरी का कार्य करते हैं। वर्त्तमान में पुरुष पहाड़ों में पत्थर काटने जाते हैं तो महिला जंगल में लकड़ी काटने जाती हैं।

रोहतास जिला में मुख्यतः स्वतंत्र रूप से वनवासी परम्परा के मुताबिक कर्मा एवं सरहुल की पूजा की जाती हैं। माता धरती की पूजा जानवर की बलि और शराब गिराकर करने की परम्परा अभी भी बनी हुई है।

रोहतास की जनजाति समुदाय सरकार की विकास नीति बनने के बाद भी हर दृष्टिकोण से पिछड़ी एवं उपेक्षित हैं। रोहतास में विकास की प्रक्रिया वनवासियों को एक ओर छोड़कर अग्रसर हो रही है। उनके लिए विकास की प्रक्रिया नयी चुनौतियों के समान है। अधिकांश वनवासी वर्त्तमान परिवर्त्तन का लाभ उठाने को तैयार नहीं है क्योकि नयी व्यवस्था को समझने के लिए आवश्यक शिक्षा से वंचित रह गये हैं।

रोहतास के वनवासी जाति में सामाजिक परिवर्त्तन के साथ आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति उभरती जा रही है। आधुनिकीकरण की संकल्पना उस सामाजिक परिवर्त्तन की ओर निर्देश करती है जो विशेषकर आधुनिक काल में यूरोपीय देशों में और फिर हाल ही के वर्षों में विश्व के अन्य देशों में हुआ। यह एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिसके कई आयाम हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो साधनों के विवेकपूर्ण प्रयोग पर होती है और आधुनिक समाज की स्थापना के उद्देश्य से मुक्त होती है। नगरीकरण, व्यापक साक्षरता, प्रति व्यक्ति अधिक आय विस्तृत औद्योगिक तथा सामाजिक गतिशीलता, जनसंचार साधनों का विस्तार आधुनिकीकरण के हेतु हैं।

इस प्रकार स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि आधुनिक सभ्यता के आकर्षण तथा सुविधा से वंचित रहने क बावजूद रोहतास के पहाड़ों पर बसने वाली जातियों में विकास के प्रति ललक देखी जा सकती है। पहाड़ों पर विद्यालय की स्थापना कर इन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने का प्रयास तो हो रहा है, फिर भी पर्याप्त साधनों के अभाव में ये लोग परम्पराओं में जीने को विवश हैं। आज भी आजीविका की समस्या से जूझती हुई ये जातियाँ अशिक्षा एवं गरीबी का दंश झेल रही हैं। नक्सली गतिविधियों का शिकार भी इन्हें होना पड़ता है। इनके विकास के लिए आवश्यक है कि इनकी आजीविका सुनिश्चित की जाय एवं शिक्षित बनाकर समाज एवं राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया जाय। ●

ग्रामीण निर्धनता
निवारण एवं रोजगार–सृजन में मनरेगा की भूमिका

प्रभाकर कुमार

रिसर्च स्कॉलर
L.S.W.

यद्यपि गरीबी और बेरोजगारी दोनों मानवीय अभिशाप है लेकिन इन दोनों में बेरोजगारी ज्यादा बड़ा दानवीय अभिशााप है। गरीबी कम–से–कम जीने का अवसर तो देती है, जबकि बेरोजगारी जीने के अवसर से भी वंचित कर देती है। सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास, शुरू से ही भारतीय आयोजन का मूल दर्शन रहा है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सरकार द्वारा बनाई गई गरीबी निवारण एवं रोजगारपरक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के केन्द्र बिन्दु में सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य रहा है। मनरेगा भी ऐसे ही प्रयासों की एक अगली कड़ी है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) जो 2005 में पारित किया गया, जिसका उद्देश्य असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना था। इस योजना की शुरूआत 2 फरवरी 2006 को की गई, जिसे 2 अक्टूबर 2009 से महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम के अनुसार किसी ग्रामीण परिवार का व्यस्क अकुशल श्रमिक यदि श्रम करना चाहता है तो एक वित्तीय वर्ष में उस परिवार को कम–से–कम 100 दिन का रोजगार देने की गारंटी दी गई है। यद्यपि मनरेगा का मूल उद्देश्य गाँवों में रोजगार की व्यवस्था करना है, लेकिन इसका प्रभाव केवल रोजगार के सृजन तक ही सीमित नहीं है। इसने ग्रमीण जीवन के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पक्ष को भी प्रभावित किया है। बेरोजगारी एवं गरीबी दूर करने के साथ इसने ग्रामीणों के बुनियादी सोच में भी परिवर्त्तन लाया है। इससे ग्रामीणों में नवीन आशा एवं विश्वास का संचार हुआ है। इसने बेरोजगारों को जहाँ एक ओर रोजगार मुहैया कराया है वही दूसरी ओर उनकी क्रय–शक्ति को मजबूती प्रदान किया है जिससे विभिन्न उपभोक्ता उत्पादों की मांग में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है जो आर्थिक विकास को गति प्रदान करने और आर्थिक मंदी से उबरने में सहायक सिद्ध हुआ है।

इसके अंतर्गत आनेवाले जल संरक्षण और जल संभरण, वृक्षारोपण, लघु सिंचाई कार्य, भू–सुधार, बाढ़ नियंत्रण, सुगम ग्रामीण सम्पर्क साधन जैसे कार्यक्रमों ने न केवल लोगों को उनके घर/गाँव के पास ही रोजगार मुहैया कराया है बल्कि रोजगार की तलाश में उनके पलायन को रोका है तथा समाज में सम्मान के साथ जीने का हक दिया है। इससे सामाजिक सौहाद्र तथा आपसी भाईचारे की भावना को बल मिला है तथा विग्रह, तनाव और अशांति का वातावरण कम हुआ है।

प्रायः ऐसा देखने को मिलता है कि हमारे यहाँ अच्छी–से–अच्छी योजनाएँ अथवा कार्यक्रम अपने उद्देश्यों की पूर्ति में असफल या कम सफल हुई हैं। मनरेगा भी इसका अपवाद नहीं है। यह सही है कि इसके अंतर्गत पारदर्शिता को बनाए रखने और सामाजिक अंकेक्षण के द्वारा योजना के लाभों को वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँचाने का

प्रयास किया जा रहा है। फिर भी इस योजना के कार्यान्वयन के दौरान भ्रष्टाचार एवं कुप्रबंधन की बातें सामने आई हैं। आवश्यकता है इस अधिनियम के उन छिद्रों को भरने की जिससे कि इसका लाभ वास्तविक लाभार्थी तक पहुँच सके। साथ ही जरूरत है वैसे अपेक्षित योजनाओं एवं कार्यक्रमों की तलाश करने की जिन्हें इस अधिनियम के कार्यक्रमों में सम्मिलित कर सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के साथ–साथ आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

उद्देश्यः–

(1) बेरोजगारी एवं गरीबी को कम करना।

(2) आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना।

(3) वास्तविक लाभार्थियों तक योजना के लाभ को पहुँचाना।

(4) योजना/कार्यक्रम के मार्ग में उपस्थित बाधाओं की पहचान करना एवं उनके निराकरण का सुझाव देना।

(5) मनरेगा अधिनिमय में रह गये छिद्रों की तालश करना एवं भरने का सुझाव देना।

(6) मनरेगा में पारदर्शिता, हिसाबदेयता एवं सामाजिक अंकेक्षण को और अधिक सशकत बनाना।

(7) मनरेगा में सम्मिलित किये जाने वाले नये कार्यक्रमों की तलाश करना।

(8) कार्य के अधिकार के प्रति जन–चेतना जागृत करना।

परिकल्पनाः–

गरीबी, बेरोजगारी एवं आय विषमताएँ तीनों सगी बहने हैं अथवा एक–दूसरे की जननी है। इस विषम चक्र को तोड़कर ही सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। रोजगार वह सशक्त उपाय है जो गरीबी का कफन ओढ़े लाखों–करोडों लोगों को राहत प्रदान कर सकता है परन्तु इसके लिए जरूरी है कि रोजगार को आयोजन का केन्द्र बिन्दु बनाया जाये और श्रम प्रधान तकनीकों को प्राथमिकता दिया जाये।

भारत में अधिकतर बेराजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाती है जिसके दो स्वरूप हैं। मौसमी बेरोजगारी एवं आदृश्य बेरोजगारी। मौसमी बेरोजगारी का मुख्य कारण कृषि के तरीकों, भूमि की बनावट एवं उगाई जानेवाली फसलों के स्वरूप में अंतर का पाया जाना है। इसके विपरीत अदृश्य बेरोजगारी का मुख्य कारण कृषि पर आवश्यकता से अधिक श्रम–शक्ति का आश्रित रहना है।

भारत जैसे विकासशील देश में यह विडम्बना ही है कि छः दशकों की लम्बी विकास यात्रा के बावजूद गरीबी एवं बेरोजगारी का भूत और भविष्य आज भी एक ही धरातल पर खड़ा है। प्रसन्नता की बात है कि PMGSY, JRY, SGSY, SJSRY जैसे अनेक कार्यक्रम इस समय देश/राज्य में चालू किये जा चुके हैं जिसमें मनरेगा एक सशकत अगली कड़ी है। मनरेगा के अंतर्गत किए गए प्रावधानों का सही तरीके से अनुपालन कर गरीबी एवं बेरोजगारी पर गहरा चोट/प्रहार किया जा सकता है और सामाजिक न्याय सुनिशचित करने के साथ आर्थिक विकास की संकल्पना को पूरा किया जा सकता है। इसलिए मनरेगा का सूक्ष्म अध्ययन ही इस शोध की परिकल्पना है। ●

मनरेगा परियोजनाओं का जल संरक्षण एवं पर्यावरण संतुलन पर प्रभाव

रंजीत कुमार राय

व्याख्याता, भूगोल विभाग
पटेल कॉलेज, बिक्रमगंज

केन्द्र सरकार की 2005 में बनी अति महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम का शुभारम्भ माननीय प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने 2 फरवरी 2006 को आन्ध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले से प्रारम्भ किया। पहले चरण में वर्ष 2006–07 के दौरान देश के 7 राज्यों के 200 चुनिन्दा जिलों में इस योजना का क्रियान्वयन किया गया जिसमें सर्वाधिक 22 जिले बिहार के थे। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 'नरेगा' (NREGA) को महात्मा गाँधी के नाम से जोड़कर 2 नवम्बर 2009 से इसे महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 'मनरेगा' (MNREGA) के नाम से जाना जाता है।

सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करना शुरू से ही भारतीय आयोजन का केन्द्र बिन्दु रहा है। ग्रामीण गरीबी, बेरोजगारी एवं भूख से निजात पाने के लिए जो भी कार्यक्रम एवं योजनाएँ बनाई गई है उनका मूल उद्देश्य सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास की संकल्पना को साकार करना ही रहा है। मनरेगा भी ऐसे ही प्रयासो की अगली कड़ी है।

इस अधिनियम का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे प्रत्येक परिवार को एक वित्त वर्ष के दौरान कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने का गारंटी देना है जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार हैं। मनरेगा ने ग्रामीण क्षेत्रों के अकुशल श्रमिकों को न केवल उनके घर के पास रोजगार के साधन उपलब्ध कराया है बल्कि उनकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित किया है।

मनरेगा के अन्तर्गत जलसंचय तथा जलसंरक्षण, सूखे से बचाव के लिए वृक्षारोपण एवं वन सरंक्षण, परम्परागत जल स्रोतों के नवीकरण हेतु जलाशयों से गाद की निकासी भूमि विकास, बाढ़ नियंत्रण एवं सुरक्षा परियोजनाएँ, जिसमें जल भराव ग्रस्त इलाकों से जल की निकासी, सड़क, पुल, नालियों के निर्माण कार्य इत्यादि हैं।

मनरेगा के अन्तर्गत स्वीकार्य परियोजनाओं के क्रियान्वयन से ग्रामीण विकास एवं रोजगार सृजन के साथ ही साथ जल का संरक्षण तथा पर्यावरण की क्षति को भी रोका जा सकता है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, खाद्यानों की मांग में वृद्धि, शहरीकरण की तीव्र बढ़ती प्रवृति तथा तीव्र औद्योगीकरण ने जल के उपयोग को बढ़ा दिया है। भूमिगत जल के लगातार विदोहन तथा वर्षा के जल के भूमि में पर्याप्त मात्रा में अवशोषित न होने के कारण भूमिगत जलस्तर घटता जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार वर्षा के जल का लगभग 52 प्रतिशत भाग समुद्र की भेंट चढ़ जाता है। इससे पेयजल का संकट बढ़ता जा रहा है। इसके साथ ही जल संसाधन पर्यावरण तथा परिस्थितिकी तंत्र को भी प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। जल से जलवायु, मृदा, कृषि वनस्पति तथा जीव–जन्तु सभी प्रभावित होते हैं। अतः जल संसाधन का संरक्षण अपरिहार्य है।

मनरेगा के अन्तर्गत बांधों, तालाबों एवं नहरों का निर्माण कराया

जा रहा है जिससे वर्षा काल के दौरान व्यर्थ में बह जाने वाले जल का संचय होता है तथा जल की कमी से पर्यावरण को होनेवाली क्षति को रोका जा सकता है साथ ही पर्यावरण को संतुलित रखा जा सकता है। इसके अन्तर्गत परम्परागत जल स्रोतों के पुनर्नवीकरण हेतु जलाशयों से गाद की निकासी का कार्य भी किया जाता है जिससे जल का संरक्षण होता है।

मनरेगा के अन्तर्गत बाढ़ नियंत्रण तथा जलभराव से ग्रस्त इलाकों से पानी निकासी की व्यवस्था पर जोर दिया गया है। जलभराव के कारण भूमि में लवणों का संकेन्द्रण बढ़ जाता है और भूमि क्षारीय हो जाती है जिससे भूमि की उत्पादकता कम हो जाती है। बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के विकास तथा संचालन के लिए वनों की कटाई की जाती है जिससे पर्यावरण असंतुलन पैदा होता है लेकिन मनरेगा के अन्तर्गत सूक्ष्म एवं लघु सिंचाई परियोजनाओं का क्रियान्वयन किया जाता है जिससे पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराकर कृषि उत्पादकता को बढ़ाना संभव हो पाता है।

मनरेगा के अन्तर्गत वृक्षारोपण तथा वन संरक्षण परियोजनाओं को शामिल किया गया है। वन, वर्षा एवं भूमिगत जल के लिए उपयोगी होते हैं। वनों के कारण तापमान कम रहता है तथा इससे बादलों का संघनन अधिक होता है इस कारण वर्षा अधिक होती है। वृक्षों की जड़े भूमि की उपरी सतह को पकड़े रहती है जिससे भूमि का कटाव एवं भू–क्षरण नहीं होता है। वनों के पत्तों के सड़ने गलने से भूमि की उर्वरता बढ़ती है। वन तेज हवाओं को रोकते हैं जिससे उर्वरा मिट्टी की हानि नहीं होती है। अतिवर्षा की पानी को वन अवशोषित कर एक तरफ जहाँ बाढ़ को रोकता हैं वहीं दूसरी तरफ भू–जल स्तर को बढ़ाता हैं।

इसके अलावा वृक्ष कार्बन–डाई–ऑक्साइड अवशोषित कर पर्यावरण शुद्ध करते हैं। एक वृक्ष अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में 12 टन कार्बन–डाइ–ऑक्साइड अवशोषित कर 0.04 टन ऑक्सीजन पर्यावरण को देता है। वनों के कटाव के कारण पर्यावरण की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई है तथा जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हो गया है। बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्त हो गई और बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर है।

मनरेगा के जल संरक्षण तथा वृक्षारोपण से जुड़े होने के कारण जलसंरक्षण एवं पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में मदद मिलेगी। इस कानून के उचित क्रियान्वयन से ग्रामीण आबादी के एक बड़े हिस्से को खुशहाल बनाया जा सकता है। आवश्यकता है मनरेगा अधिनियम में रह गए उन छिद्रों को भरने की जिसके कारण इस योजना का पुरा–पुरा लाभ नहीं मिल पाता है।●

उदारीकरण के युग में कर्मचारी शिक्षा का महत्व

डॉ० बाबू लाल राम

अभिषद सदस्य
बी.के.एस.यू. आरा (बिहार)

आज उदारीकरण, भूमण्डलीकरण एवं निजीकरण की आँधी बह रही है। इस बाजारीकृत यांत्रिक व्यवस्था में सब कुछ बदल रहा है। विश्व पटल पर अनेकों प्रकार की समस्याएँ उभर कर आ रही है और नयी–नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। प्रशासनिक उत्तरदायित्व बदलता एवं बढ़ता जा रहा है। वर्त्तमन समय में जबकि प्रबन्धन का महत्व सभी क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है, चाहे वह निजी प्रबन्धन, सार्वजनिक प्रबन्धन या औद्योगिक प्रबन्धन का क्षेत्र हो सभी जगह कर्मचारियों (श्रमिकों) की निपुणता, कार्यकुशलता एवं प्रतिबद्धता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

विश्व की विद्यमान परिस्थितियाँ कर्मचारियों के लिए शिक्षा व्यवस्था की माँग करती हैं जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है, क्योंकि कर्मचारी न केवल औद्योगिक संगठन का ही एक अंग है, अपितु समाज का एक सक्रिय सदस्य भी है और प्रजातांत्रिक देश के नव–निर्माण की संरचना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक संगठनों का सामाजिक उत्तरदायित्व इस बात की मांग करता है कि वे अपने कर्मचारियों के लिए सामन्य शिक्षा की वयवस्था सुनिश्चित करें। कर्मचारी शिक्षा आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं नैतिक वातावरण के अनुरूप कदम से कदम मिलाकर चलने में सहायक होती है।

शिक्षा बौद्धिक जगत् का प्रवेश का द्वार है। यह व्यक्तित्व में चमक पैदा करती है और उत्तरदायित्व का बोध कराती है। औद्योगिक एवं व्यवसायिक जगत् की इस पुनीत कार्य में अवश्य ही भागीदारी होनी चाहिए क्योंकि कर्मचारी शिक्षा अन्तोगत्वा उद्योग, व्यवसाय, समाज एवं राष्ट्र को मजबूत आधार प्रदान करेगी। कर्मचारियों को पुस्तकीय सर्वोत्तम ज्ञान के साथ–साथ अनुकूल वातावरण द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे उनके सर्वोत्तम एवं उपयोगी शक्तियों का अधिकतम विकास किया जा सके और वे विश्व के बदलते परिदृश्य में उत्पन्न समस्याओं एवं चुनौतियों का मुकाबला करने में सक्षम हो सके।

प्रायः कर्मचारी शिक्षा और कर्मचारी प्रशिक्षण में विचारधारात्मक भ्रांति पायी जाती है। परन्तु दोनों की अवधारणा में अन्तर है जिसको व्याख्यायित करने का प्रयास करेगें।

प्रगतिशील देशों में प्रबंध एवं श्रम द्वारा संयुक्त रूप से व्यावसायिक क्रियाओं के नियोजन, संगठन, सेचालन, निर्देशन एवं नियंत्रण की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है। इस प्रवृत्ति की अवहेलना एक जघन्य मानवीय, सामजिक एवं राष्ट्रीय अपराध समझा जाने लगा है। संयुक्त रूप से परियोजनाओं के सम्पादन के अनुभव बतलाते हैं कि श्रम एवं प्रबंध के मिलजुलकर कार्य करने से श्रम समस्याओं और औद्योगिक विवादों में कमी आती है साथ ही नियोजकों एवं श्रम द्वारा मिलजुलकर कार्य न करने की स्थिति में अथवा पूर्व अनुबंध के अनुसार कार्य सम्पादन और लाभों का बंटवारा

न होने पर श्रम समस्याओं एवं औद्योगिक विवादों में वृद्धि होती है और कार्य संस्कृति प्रदूषित होती हे।

इस प्रकार औद्योगिक समाज की लाभदायकता में वृद्धि स्वस्थ औद्योगिक कार्य संस्कृति, श्रम समाज को उचित स्थान की प्राप्ति और उद्योगों में समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिए कर्मचारी शिक्षा की अनिवार्यता को स्वीकार करना प्रजातांत्रिक देश, काल एवं परिस्थितियों की मांग है और हमारी बाध्यता भी है।

भारत एक विकासशील राष्ट्र है जहाँ संसाधनों की कमी के कारण प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त प्रशिक्षण सुविधाओं को जुटा पाना संभव नहीं हो पा रहा है। कर्मचारियों के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण सुविधाओं की उपलब्धता नहीं हो सकती है। ऐसे में कर्मचारी शिक्षा का महत्व या उपादेयता प्रशिक्षण सुविधाओं की कमी की क्षतिपूर्ति करने की दृष्टि से और भी अधिक बढ़ जाता है।

सामान्यतया अब यह एक स्वर से स्वीकार किया जाने लगा है कि पूरी दुनिया में हो रहे तकनीकी एवं यांत्रिकी परिवर्त्तनों का ज्ञान कर्मचारियों को होना अतिआविश्यक है। तकनीकी एवं यांत्रिक परिवर्त्तनों के ज्ञान को शिक्षा के माध्यम से ही कर्मचारी आत्मसात कर सकेगें जिससे उन्हें देश की भावी समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करने में सहयोग मिलेगा। इसके अलावे कर्मचारियों के व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक वातावरण तैयार करने, सुविधाएँ जुटाने और मानसिक रूप से तैयार करने में भी कर्मचारी शिक्षा सहायक सिद्ध होती है। वह कर्मचारियों को न केवल उनके उत्तरदायित्वों और अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है अपितु उनकी उत्पादकता, नेतृत्व क्षमता, सामाजिकता एवं मनोबल को भी बढ़ाती है। कर्मचारी शिक्षा मधुर औद्योगिक सम्बन्धों के निर्माण में सहायक होती है। कर्मचारी शिक्षा से कर्मचारियों का दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है इसलिए इसे औद्योगिक प्रजातंत्र की आधार शिला कहा गया है।

प्रायः ऐसा देखा जा रहा है कि अभी भी भारत में सामान्य शिक्षा का स्तर निम्न कोटि का है और श्रमिक संघ आन्दोलनपूर्ण विकसित नहीं हो सका है। ऐसे में कर्मचारी शिक्षा का क्षेत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक हो गया है। भारत में अब तक कर्मचारी शिक्षा के लिए जो प्रयास किए गये हैं उनकी प्रगति संतोषजनक नहीं है। हमें उन कारणों को जानने का प्रयास करना होगा, जिनके चलते कर्मचारी शिक्षा का पूर्ण विकास नहीं हो सका है साथ ही कर्मचारी शिक्षा के लिए कारगर एवं सार्थक प्रयासों पर प्रकाश डालने का प्रयास भी करना होगा।

श्रमिक शिक्षा के फलस्वरूप, श्रमिकों के जीवन स्तर में

सुधार, परिवार नियोजन, सहकारिता, उत्तरदायित्व की भावना, श्रम संगठन, शोषण के प्रति राजनीतिक दलों से मुक्ति, स्थानीय निकायों में श्रमिक प्रतिनिधित्व आदि की ओर पर्याप्त चेतना जागृत हुई है। कर्मचारी शिक्षा ने जहाँ उनकी कार्यकुशलता एवं उत्पादकता को बढ़ाया है वहीं उनमें अधिकारों के प्रति दुराग्रह की भावना, कर्त्तव्यों के प्रति उपेक्षा एवं प्रबंध के प्रति असहयोग भावनाएँ पैदा हुई है। इन कारणों का समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयास किया जायेगा।

वस्तुतः कर्मचारी शिक्षा में मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं विधि का दृष्टिकोण रहता है। यह शिक्षा अन्य प्रकार की तकनीकी, पेशेवर तथा मार्गोपदेशक शिक्षा से अलग होती है। इसका उद्देश्य कर्मचारियों को उनके समूह के विकास के लिए तैयार करना अथवा शिक्षित करना होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मचारी शिक्षा के पीछे जो मूल बात है वह यह है कर्मचारियों की सामूहिक शक्ति का अधिकाधिक विकास हो।

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि जिस संगठन के कर्मचारी पूर्णतया शिक्षित, प्रशिक्षित एवं विकसित नहीं होते है उस संगठन के अधिकत्तम विकास, प्रगति एवं समृद्धि की संभावनाएँ अत्यन्त अल्प हो जाती है। अतः सेविवर्गीय प्रबन्ध को चाहिए कि संगठन में नियुक्त प्रत्येक कर्मचारी के लिए आवश्यक शिक्षा की सुविधा सुनिश्चित करें जिससे उनके वैयक्तिक एवं सामूहिक शक्ति का यथोचित विकास हो सके●

रोजगार और जन-शक्ति आयोजनः वर्त्तमान परिदृश्य एवं भावी चुनौतियाँ

अविनाश कुमार

रिसर्च स्कॉलर
एम.ए., L.S.W.

भारत में बढ़ती बेरोजगारी ने गरीबी को निरंतर बढ़ावा दिया है। यद्यपि बेरोजगारी एवं गरीबी दोनों दानवीय अभिशाप है लेकिन इन दोनों में बेरोजगारी ज्यादा बड़ा दानवीय अभिशाप है। गरीबी कम–से–कम जीने का अवसर तो देती है जबकि बेरोजगारी जीने के अवसर से भी वंचित कर देती है।

जब कोई व्यक्ति कार्य करने को इच्छुक है और शारीरिक रूप से कार्य करने में समर्थ भी है, लेकिन उसको कोई कार्य नहीं मिलता जिससे कि उसकी जीविका चल सके तो इस प्रकार की समस्या बेरोजगारी कहलाती है। भारत एक विकासशील देश है। विकसित देशों में बेरोजगारी का मूल कारण प्रभावपूर्ण मांग में कमी का होना है जिसके कारण वहाँ अस्थाई अथवा चक्रीय प्रकृति की बेरोजगारी उत्पन्न होती है लेकिन भारत जैसे अल्प विकसित देशों में बेरोजगारी, पूँजी या अन्य अनुपूरक साधनों के अभाव का परिणाम होती है।

जहाँ तक भारत में व्याप्त बेरोजगारी की संरचना का सवाल है यहाँ अधिकांशतः बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र में पायी जाती है जिसके दो स्वरूव है– मौसमी एवं अदृश्य बेरोजगारी। नगरीय क्षेत्र की बेरोजगारी के भी दो स्वरूप है– औद्योगिक श्रमिकों में बेरोजगारी और शिक्षित बेरोजगारी। इसमें कोई शक नहीं कि देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी को नियंत्रित करना अति आवश्यक है क्योंकि कोई भी कल्याकारी राज्य एवं लोकतांत्रिक समाजवादी में मानवीय साधनों का अल्प उपयोग सहन नहीं किया जा सकता। भारत सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अतिरिक्त निवेश द्वारा अतिरिक्त रोजगार के सृजन के लिए हर संभव प्रयास किये गये हैं। लेकिन आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिल सकी है।

लगभग एक दशक पूर्व तक आर्थिक जगत् में यह धारणा प्रचलित थी कि तीव्र आर्थिक विकास से रोजगार के अवसरों में विस्तार होता है। लेकिन हाल ही के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) के सर्वेक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि आर्थिक विकास और रोजगार में यह सम्बन्ध (Correlation) नहीं है।

NSSO द्वारा उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वर्ष 1993–94 से 2010–11 के दौरान रोजगार की समग्र वृद्धि में गिरावट दर्ज की गई है जो मुख्य रूप से कृषि में कम रोजगार के कारण हुई। कुल रोजगार में कृषि का हिस्सा 61 प्रतिशत से घटकर 52 प्रतिशत रहा। इस अवधि के दौरान विनिर्माण के हिस्से में मामूली रूप से वृद्धि हुई। लेकिन व्यापार, होटल एवं रेस्तरां क्षेत्र का समग्र रोजगार में योगदान पिछले वर्षों की तुलना में काफी अधिक रहा। ऐसे अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र जिनका रोजगार में हिस्सा बढ़ा है वे वित्त, बीमा, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ, परिवहन, भण्डारन एवं संचार है। 11वीं योजना (2007–12) में रोजगार के 58 मिलियन अवसरों के सृजन का लक्ष्य रखा गया था।

रोजगार वह सशक्त उपाय है जो गरीबी का कफन ओढ़े करोड़ों लोगों को राहत प्रदान कर सकता है। परन्तु इसके लिए जरूरी है कि

रोजगार को आयोजन का केन्द्र–बिन्दु बनाया जाय और उत्पादन की नीतियाँ इस केन्द्रीय उद्देश्य के इर्द–गिर्द बुनी जाये। हमारे योजना प्रलेखों में यह बात कई बार दोहरायी गयी है कि ''रोजगार वह सबसे विश्वसनीय उपाय है जिसके द्वारा निर्धनता रेखा से नीचे रहने वलो असंख्या व्यक्तियों को ऊपर उठाया जा सकता है।'' वास्तव में यह उद्घोष केवल बेरोजगारों के प्रति एक राजनैतिक संवेदना मात्र है क्योंकि रोजगार को आयोजन का केन्द्र–बिन्दु बनाने और उत्पादन–नीतियों को इस केन्द्रीय उद्देश्य के इर्द–गिर्द बुनने संबंधी रणनीति की सदैव अवहेलना की गयी है। भारतीय आयोजन की शायद सबसे कमजोर कड़ी इसका रोजगार पक्ष है जिसका दीर्घकालीन समाधान करने के बजाय, हमेशा अस्थायी और लुभावने परन्तु निरर्थक कार्यक्रमों द्वारा अल्पकालीन समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है।

फिर बेरोजगारी हटाने संबंधी जितने भी कार्यक्रम तैयार किये गये हैं उनका कार्यान्वयन पक्ष बेहद कमजोर रहा है। संसाधनों का अपव्यय एवं कोषों का रिसाव आम बात है। पहले नौकरशाही यह पूण्य–लाभ कमाती थी अब ग्राम पंचायतें भी यह पुण्य–लाभ उठा रही है। फिर पिछली सरकार के बदल जाने पर पुराने कार्यक्रम बीच में ही छोड़ दिए जाते हैं और उनके स्थान पर नई सरकार द्वारा नये कार्यक्रमों की घोषणा कर दी जाती है।

देश में विद्यमान बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए जनशक्ति के सदुपयोग की नितांत आवश्यकता है। जब तक जनशक्ति का सर्वोपयुक्त ढ़ंग से आयोजन नहीं किया जाता है तब तक रोजगार का प्रश्न अधर में ही लटकता रहेगा।

आज उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं आधुनिकीकरण की लहर में विश्व के सभी देश अपनी अर्थव्यवस्था के आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतु महत्वाकांक्षी योजनाओं को साकार रूप देने में व्यस्त हैं। किसी भी क्षेत्र में जनशक्ति के अनियोजित बने रहने पर न केवल उस देश के मानवीय संसाधनों का गुणात्मक पहले कमजोर होने लगता है बल्कि बालू के प्रचण्ड वेग के समान उभरने वाली बेरोजगारी उस देश की सभी विकास योजनाओं को नेस्ताबूद कर देती है। फ्रैडरिक हार्बीसन एवं चार्ल्स बेयर का मत है कि जनशक्ति आयोजन सामान्य नियोजन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। एक ओर यह आर्थिक नियोजन को परिपक्वता प्रदान करता है तो दूसरी ओर समाज के मानवीय मूल्यों को श्रेष्ठता प्रदान करके विकास कार्यों में सुदृढ़ता लाता है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में देश काल, परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं की मांग को ध्यान में रखते हुए रोजगार–जनन में जनशक्ति आयोजन के महत्व पर प्रकाश डालने तथा उपयोगिता सिद्ध करने का प्रयास किया जायेगा।

बेरोजगारी एक विश्वव्यापी समस्या है। इस समस्या का समाधान वर्त्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। बेरोजगारी को कम करने के बहुत से उपाय एवं प्रयास किये जा सकते हैं। लेकिन जनशक्ति आयोजन द्वारा बेरोजगारी का हल पूर्णतः सफल प्रयास होगा और इससे मानवता की सर्वाधिक सेवा हो सकेगी।

●

ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण में दूरस्थ शिक्षा की भूमिका

डॉ० आनन्द कुमार

एम. ए. अर्थशास्त्र

भोजन, वस्त्र एवं आवास के बाद शिक्षा मानव जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है और समाज का शिक्षा से वंचित रह जाना सबसे बड़ा सामाजिक अभिशाप है। यह सच है कि भारत जैसे लोक–कल्याणकारी राष्ट्र में शिक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इसे सभी के लिए सुलभ कराने का प्रयास किया जा रहा है लेकिन सरकारी प्रयासों के बावजूद अभी भी परम्परागत शिक्षा की पहुँच सबके लिए नहीं हो सकी है। महिलाओं एवं खासकर ग्रामीण पृष्ठभूमि की महिलाओं में परम्परागत शिक्षा का घोर अभाव है। यह जानकर खुशी हो रही है कि सरकार लगातार ऐसे विकल्पों की तलाश में लगातार कार्य कर रही है जिससे शिक्षा की रोशनी सभी वर्गो तक पहुँच सके। 'दूरस्थ शिक्षा' ऐसे ही प्रयासों की एक सशक्त कड़ी है जो महिला सशक्तीकरण के लिए सार्थक सिद्ध होगी। इस सच से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आबादी का आधा हिस्सा महिलाओं का है और महिलाओं खासकर ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा साक्षरता दर बहुत ही कम है। यह निश्चित तौर पर सोचनीय एवं इनके बीच शिक्षा को बढ़ाना राज्य या सरकार की जबावदेही है।

ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा का घोर अभाव निम्न कारणों से है– जनसंख्या की तीव्र वृद्धि, ग्रामीण गरीबी, सम्पर्क साधनों का अभाव, परम्परागत शिक्षा का महंगा होना, महिलाओं में जागरूकता की कमी और सरकार की उदासीनता। सरकार इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर, सभी को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए परम्परागत शिक्षा के विकास के रूप में दूरस्थ शिक्षा के उपर ध्यान केन्द्रीत कर रही है और दूरस्थ शिक्षा परम्परागत शिक्षा का एक सार्थक एवं सटीक विकल्प बनकर उभरा है।

दूरस्थ शिक्षा उनलोगों के लिए बहुत उपयोगी एवं सार्थक है जो किन्हीं कारणों से परम्परागत शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह गए हैं या वैसे लोग जो विभिन्न सरकारी अथवा गैर सरकारी सेवाओं में होने के कारण अपनी शैक्षिक स्तर को उठाने में अपने आप को असहाय पाते हैं। दूरस्थ शिक्षा में परम्परागत शिक्षा की तरह शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों में आमने सामने सम्पर्क नहीं हो पाता है बल्कि शिक्षार्थियों को डाक या दूरसंचार के साधनों द्वारा पठन–पाठन की सामग्री उपलब्ध करा दी जाती है। सभी के लिए शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दूरस्थ शिक्षा सर्वोतम विकल्प है। यह समाज के अभिवंचितों ग्रामीण–महिलाओं एवं नौकरी शुदा लोगों के लिए अत्यंत ही लाभदायक एवं महत्वपूर्ण है। यह महिलाओं और खासकर ग्रामीण महिलाओं के लिए सर्वाधिक उपयोगी है। यदि महिलाओं को शिक्षित बनाया जाता है तो वे देश के विकास में अपना श्रेष्ठ योगदान कर सकती है। महिलाओं के शिक्षित होने से उनके बीच आशा एवं विश्वास की लहर पैदा होती है तथा उनके लिए नई–नई सूचनाओं के द्वार खुल जाते हैं, साथ ही उनके सोच में साकारात्मक परिवर्त्तन होता है।

महिला शिक्षा की मुख्य बाधाएँः—

उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं निजीकरण की चकाचौंध रोशनी में भी शिक्षा ग्रामीण महिलाओं की पहुँच से काफी दूर है। जब इसके तह में हम जाते हैं तो पता चलता है कि बहुत से सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं संस्थानिक बाधाएँ हैं जो महिलाओं को शिक्षा से दूर या उन्हें बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ने के लिए मजबूर कर देते हैं, लेकिन खुशी इस बात से है कि ग्रामीण महिलाओं में पढ़ने या शिक्षा प्राप्त करने की उत्सुकता बढ़ी है और दूरस्थ शिक्षा उसमें अहम् भूमिका निभा रही है। जिससे ग्रामीण महिलाओं का सशक्तीकरण हो रहा है।

दूरस्थ शिक्षा का ग्रामीण महिला शिक्षार्थियों पर प्रभावः—

- आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान में वृद्धि
- कार्य कुशलता एवं दक्षता में वृद्धि
- जवाबदेही की भावना का विकास
- रोजगार के अवसरों में वृद्धि
- उच्च शिक्षा के अवसरों में वृद्धि
- निर्णय लेने की क्षमता का विकास
- पारिवारिक जीवन में सौहार्द
- साकारात्मक सोच का विकास
- शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार
- महिलाओं को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन
- आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सशक्तीकरण
- ग्रामीण महिलाओं की साक्षारता का विकास

सुक्षावः—

आज के वैज्ञानिक युग में प्रशिक्षित एवं योग्य शिक्षकों के द्वारा समाजोपयोगी एवं रोजगार जनन पाठ्यक्रमों को तैयार कराकर दूर—सुचार के साधनों एवं उपग्रहों के प्रयोग से ग्रामीण क्षेत्रों जहाँ आवागमन के साधनों का पर्याप्त विकास नहीं हो सका है तथा परम्परागत एवं औपचारिक शिक्षा की पर्याप्त पहुँच नहीं हो सकी है, दूरस्थ शिक्षा की पहुँच द्वारा ग्रामीण महिलाओं का शैक्षिक सशक्तिकरण किया जा सकता है। ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए निम्नांकित सुझाव अति सार्थक साबित होगेंः—

- दूरस्थ शिक्षा के प्रति जागरूकता के कार्यक्रमों को ग्रामीण क्षेत्रों के बीच प्रचारित एवं प्रसारित किया जाय।
- ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए तकनीकी शिक्षा के कार्यक्रम एवं योजनाओं को विकसित किया जाय।
- दूरस्थ शिक्षा पाठ्य सामग्रियों को सरल, सुबोध एवं बोधगम्य बनाया जाय।
- ग्रामीण महिलाओं के लिए पुस्तकालयों एवं वाचनालयों की व्यवस्था सुनिश्चित किया जाय।
- टेलीविजन एवं रेडिया प्रसारण से शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला जाय।

अगर दूरस्थ शिक्षा के प्रति ईमानदार कोशिश की जाय तो निश्चित रूप से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण में दूरस्थ शिक्षा मील का पत्थर साबित होगी और दूरस्थ शिक्षा की दुधिया रोशनी में ग्रामीण महिला एक सभ्य समाज के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगी।

भारत में दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तीकरण

कमलेश कुमार कौशल

रिसर्च स्कॉलर

किसी भी राष्ट्र का विकास वहाँ के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर आये मूलभूत परिवर्त्तन को देखकर ही आँका जा सकता है। यह एक प्रक्रिया है, जिसका मूल उद्देश्य समाज के सभी तबके के लोगों को मुख्य धारा से जोड़ना होता है ताकि हरेक को अपनी क्षमता का उपयोग करने का मौका मिल सके। विकास के इस रूप की विवेचना करने का पर शिक्षा इसके एक अभिन्न अंग के रूप में सामने आता है। विकास की यह संकल्पना और उसमें शिक्षा की भूमिका हमारे राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुणों पर निर्भर करती है।

विकास के आदर्श संकल्पना को आकार देने में शिक्षा के महत्व को समझने के बावजूद भी हमारी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था इसे सबके लिए उपलब्ध कराने में सफल नहीं हो पा रही है। हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा, विशेष रूप से महिलाएँ, आज भी शिक्षा से वंचित हैं। इसक मुख्य कारणों में 'जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि' और 'परम्परागत औपचारिक शिक्षा का महंगा होना; सर्वोपरि है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर हमारी सरकार शिक्षा के अन्य विकल्पों पर विचार कर रही है। दूरस्थ शिक्षा ऐसा ही एक विकल्प है जो आधुनिक मानव के लिए परम्परागत शिक्षा का एक सटीक विकल्प बनकर उभरा है।

दूरस्थ शिक्षा उन सभी लोगों को औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने का मौका उपलब्ध कराता है, जो किन्हीं कारणों से स्कूली या कॉलेज की शिक्षा नहीं ले पाते। इस शिक्षण व्यवस्था में शिक्षकों और विद्यार्थियों में सीधे बात नहीं होती। उसके स्थान पर डाक तथा अन्य दूरसंचार के साधनों का उपयोग कर उन्हें पठन–सामग्री उपलब्ध करायी जाती है, जिससे विद्यार्थी लाभान्वित होते हैं।

दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम एवं परीक्षा व्यवस्था का लचीलापन इसका विशेष गुण है। जो इसे सरल एवं सुलभ बनाता है। इसके अलावा यह पद्धति शिक्षा क तीव्र विस्तार में सक्षम है। क्योंकि इसमें शिक्षक के स्थान पर केवल पठन–सामग्री उपलब्ध कराना होता है। इस प्रकार 'सभी के लिए शिक्षा' के हमारे उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु यह सर्वोत्तम विकल्प है। इस पद्धिति की एक विशेषता यह भी है कि यह सामाजिक, आर्थिक एवं व्यक्तिगत– 'जैसे उम्र अधिक होना' आदि बाधाओं को आसानी से दूर कर सभी के लिए आसानी से उपलब्ध है। कई लोग तो नौकरी करने के साथ–साथ इस पद्धति से अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेते हैं। इस तरह की बाधाएँ महिलाओं के सामने अधिक होती है। अतः उनके लिए भी यह व्यवस्था बहुत उपयोगी हो सकती है। आवश्यकता है तो बस उन्हें इसके विषय में जागरूक बनाने की।

महिलाएँ एवं दूरस्थ शिक्षाः–

हमारे देश में लगभग 50 प्रतिशत आबादी महिलाओं की है। किन्तु 9 प्रतिशत ही महिलाएँ मानव संसाधन की श्रेणी में आती हे।

इसका मुख्य कारण महिलाओं में शिक्षा का अभाव है। अर्थात् यदि उन्हें शिक्षित किया जाय तो वे भी देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है और साथ ही साथ अपनी सामाजिक–आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ कर सकती है। महिला सशक्तीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो महिलाओं को जीवन के सभ क्षेत्रों में अपनी शक्तियों को पहचानने में सक्षम बनाया है।

महिलाएँ हमारे परिवार एवं पारिवारिक जीवन का केन्द्र होती है। जब भी किसी परिवार की आर्थिक स्थिति डवांडोल होती है तो महिलाएँ ही सबसे ज्यादा प्रभावित होती है। परिवार जितना ही गरीब होता है, स्थिति उतनी ही भयावह होती है। ऐसी स्थिति में महिलाओं की अशिक्षा समूचे परिवार के लिए अभिशाप सिद्ध होती है। गरीबी और अशिक्षा, दोनों एक साथ महिला के आत्म–विश्वास को इस तरह से प्रभावित करते हैं कि वह स्वयं को किसी भी कार्य के लिए अक्षम पाती है। यदि महिलाओं को साक्षर एवं शिक्षित बनाया जाये तो उनके लिए भी नई–नई सूचनाओं के द्वार खुल जाते हैं। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण होता है प्राप्त सूचनाओं को देखने और समझने का नजरिया, जो केवल शिक्षा के माध्यम से ही परिस्कृत किया जा सकता है। इस प्रकार एक शिक्षित एवं साक्षर महिला ही अपने परिवार एवं समाज के विकास में योगदान देने के साथ–साथ स्वयं एक अच्छा एवं गरिमामय जीवन जी सकती है।

1901 से महिला साक्षरता दर का अध्ययन करने पर हमें निराशा ही मिलती है। यह 1901 में 0.06 प्रतिशत थी, जो कि 1911 में धीमी गति से बढ़कर 1.05 प्रतिशत हुई और फिर 1921 में 1.81 प्रतिशत, 1931 में 2.93 प्रतिशत, 1941 में 7.30 प्रतिशत, 1951 में 7.93 प्रतिशत, 1961 में 12.95 प्रतिशत, 1971 में 18.69 प्रतिशत, 1981 में 24.82 प्रतिशत, 1991 में 39.29 प्रतिशत और 2001 में 53.67 प्रतिशत हुई। यह आंकड़ा शिक्षा में लिंग असमानता का प्रमाण है और इसे दूर करने के लिए कारगर कदम उठाये जाने चाहिए।

दूरस्थ शिक्षा पद्धति का विस्तार और महिलाओं में इसके प्रति जागरूकता निश्चित रूप से एक अच्छा कदम होगा।

दूरस्थ शिक्षा के शिक्षार्थीः–

देश के विभिन्न शिक्षण संस्थानों से उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2001–2002 में देश भर में कुल दूरस्थ शिक्षा के शिक्षार्थियों की संख्या 11,23,344 थी, जिनमें 4,04,105 महिलाएँ थी। इसके अलाव इसी वर्ष में दूरस्थ शिक्षण कार्य से जुड़े हुए पुरूष शिक्षकों की संख्या 1120 थीं, जबकि महिला शिक्षकों की संख्या 241 थीं।

महिलाओं की शिक्षा में मुख्य बाधाएँः–

प्रारंभ से ही किसी न किसी बहाने महिलाओं को शिक्षा से दूर रखने का प्रयास किया जाता रहा है। कभी उन्हें प्रतिभाहीन और बुद्धिहीन कहा जाता है, तो कभी उनके मानसिक संतुलन पर ही प्रश्न चिन्ह् लगाया जाता रहा है। किन्तु 21वीं सदी में आकर महिलाओं ने अपनी स्थिति में सुधार लाने लिए वैश्विक स्तर पर अभियान छेड़ा।

सभी प्रयासों के बावजूद आज भी शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। आज भी बहुत सी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक बाधाएँ विद्यमान हैं। कभी सामाजिक मान्यताएँ तो कभी माता–पिता की आर्थिक मजबूरी महिलाओं को बीच में ही शिक्षा छोड़ने के लिए बाध्य करती है। किन्तु इसमें एक तथ्य यह भी है कि आज भी माता–पिता पुत्रों की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं। इसके अलावे कई माता–पिता अपनी बच्चियों को केवल महिलाओं के महाविद्यालय मे ही पढ़ाना चाहते हैं और महिला महाविद्यालय के न होने पर उन्हें पढ़ाई छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

लेकिन इन सब बातों का सकारात्मक पहलू यह है कि अब महिलाओं में आगे उच्च शिक्षा पाने की उत्सुकता बढ़ रही हैं और इसमें दूरस्थ शिक्षा अहम् भूमिका निभा सकती है। ●

My Eighteenth Birthday

I saw, there's a new young spring,
That gave me a courageous wing.

I saw, I felt new dropping rain,
That puts me out of older vain.

I saw, I touched new sprouting trees,
That gave my teenage new increase.

I saw, I noticed a cocoon tearing,
Gave me pain but lots of bearing.

I saw, there's a new running breeze,
That buzzed new word but turned me freeze.

There was a new mansoon blast,
Erased all my messed up past.

All there gave me a gorgeous pump,
Which caused my tears to be dumped.

And, I saw thou, was good shocking,
Turned my dream forever locking.

Once more it was birthday morning,
Not new but my eighteenth turning.

Parties bounties rolled up house,
Mom & Dad then gave it a pause.

Now I was free from teenage cage,
Touching the sense of sizzling age.

Smriti Bhaskaram
Student
P.G. Dept. of English (PU)

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातीय समाज पर मनरेगा के प्रभाव

(रोहतास जिला के चेनारी प्रखण्ड पर आधारित एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन)

हीरा कुमार

शोध छात्र
एम.ए. अर्थशास्त्र

चेनारी रोहतास जिला का एक कृषि प्रधान प्रखण्ड है जिसकी कुल आबादी 1,25,753 है। इसमें 12 पंचायतों के 113 गाँव हैं। इनमें से 73 गाँवों में अनुसूचित जाति एवं 5 गाँवों मं अनुसूचित जनजाति के लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं जो अपनी आजीविका के लिए कृषि एवं कृषि संबंधित कार्यो पर निर्भर रहते हैं। यहाँ से इस समुदाय के लोग गरीबी एवं बेरोजगारी की भार न सह पाने की स्थिति में रोजगार की तलाश में दिल्ली, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में बड़ी संख्या में पलायन करते हैं और उन राज्यों को आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान करने में अपना योगदान देते हैं।

सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास शुरू से ही भारतीय आयोजन का मूल दर्शन रहा है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सरकार द्वारा बनाई गई गरीबी निवारण एवं रोजगारपरक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के केन्द्र बिन्दु में सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना ही मुख्य उद्देश्य रहा है। मनरेगा भी ऐसी ही प्रयासों की एक सशक्त अगली कड़ी है।

ग्रामीण बेरोजगारी भूख और गरीबी से निजात पाने के लिए केन्द्र सरकार की महत्वकांक्षी योजना 2005 में बनी 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना' का शुभारंभ प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने 2 फरवरी 2006 को आन्ध्रप्रदेश के अनन्तपुर जिले से किया। पहले चरण में वर्ष 2006–07 के दौरान देश के 27 राज्यों के 200 चुनिंदा जिलों में इस योजना का क्रियान्वयन किया गया। इसमें सर्वाधिक 23 जिले बिहार के थे। केन्द्र सरकार की इस महत्वकांक्षी 'राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (NNREGA) का नाम बदलकर नवम्बर 2009 से 'महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनिमय' (MNREGA) कर दिया गया है।

यद्यपि मनरेगा का मूल उद्देश्य असंगठित क्षेत्र के ग्रामीण मजदूरों को रोजगार की व्यवस्था करना है लेकिन इसका प्रभाव केवल रोजगार के सृजन तक ही सीमित नहीं है। इसने ग्रामीण जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को भी प्रभावित किया है। गरीबी एवं बेरोजगारी दूर करने के साथ इस योजना ने गाँव में रहने वाले लोगों की बुनियादी सोच में भी परिवर्त्तन लाया है। इससे ग्रामीणों में नवीन सोच एवं विश्वास का संचार हुआ है। इसने न केवल ग्रामीण बेरोजगारों को रोजगार सृजन का साधन मुहैया कराया है बल्कि उनकी क्रय–शक्ति को भी मजबूती प्रदान किया है।

मनरेगा के अंतर्गत आनेवाले जन संरक्षण और जल संभरण, वृक्षारोपण, भूमि–सुधार, लघु सिंचाई एवं ग्रामीण सुगम सम्पर्क साधन जैसे कार्यक्रमों ने न केवल ग्रामीण कृषक एवं भूमिहीन मजदूरों को उनके घर के पास ही रोजगार के अवसर उपलब्ध कराया है बल्कि ग्रामीणों के बीच आपसी भाईचारा की भावना, आपसी सौहार्द तथा खुशहाली का वातावरण तैयार करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि यहाँ अच्छी से अच्छी योजनाएँ

अथवा कार्यक्रम कम सफल अथवा असफल होते रहे हैं। मनरेगा जैसा केन्द्र सरकार की अति महत्वकांक्षी योजना भी इसका अपवाद नहीं है। यद्यपि यह सच है कि इस योजना का लाभ उसके वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँचे इसके लिए इस योजना के अंतर्गत पारदर्शिता को बनाए रखने, हिसाबदेयता एवं अंकेक्षण की व्यवस्था की गई है। लेकिन इस सच्चाई से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि इस योजना के कार्यान्वयन के दौरान भ्रष्टाचार एवं कुप्रबंधन की बातें आती रही हैं और इस योजना के अपेक्षित लाभ उनके वास्तविक लाभाथियों तक नहीं पहुँच पाता है। आवश्यकता है इस अधिनियम में रह गये उन अनचाहे छिद्रों को भरने की जिससे कि इस योजना का लाभ इसके वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँच सके साथ ही वैसे अपेक्षित योजनाओं एवं कार्यक्रमों की तलाश करने की जिन्हें इस अधिनियम के कार्यक्रमों में सम्मिलत कर सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

गरीबी, बेरोजगारी एवं आय विषमताएँ तीनों सामाजिक कलंक है। इन्हें तोड़कर ही सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। अधिकतर बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है। जिसके दो स्वरूप हैं– मौसमी बेरोजगारी एवं अदृश्य बेरोजगारी। मौसमी बेरोजगारी का मुख्य कारण कृषि के तरीकों, भूमि की बनावट एवं उगाई जाने वालाी फसलों के स्वरूप में अंतर का पाया जाना है जबकि अदृश्य बेरोजगारी का मुख्य कारण कृषि पर आवश्यकता से अधिक श्रमशक्ति का आश्रित रहना है।

रोजगार वह सशक्त उपाय है जो गरीबी एवं बेरोजगारी की जिन्दगी जी रहे लोगों को राहत प्रदान कर सकती है परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि रोजगार को आयोजन का केन्द्र बिन्दु बनाया जाय और श्रम प्रधान तकनीकों को प्राथमिकता दिए जाए। ●

खेतिहर मजदूरों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रभाव

प्रमिला कुमारी

शोध-छात्रा
एम.ए. अर्थशास्त्र

जो आर्थिक योजना ग्रामीण क्षेत्रों में बेकार पड़ी रहने वाली मानवशक्ति का पूरा–पूरा उपयोग नहीं करती, वह पक्की नींव पर रची हुई अथवा बुद्धिमानी की योजना नहीं कही जा सकती। महात्मा गाँधी ने कहा था ''भूखों मरने वाली और बेकार रहने वाली जनता के सामने ईश्वर केवल एक ही स्वीकार्य रूप में प्रकट होने की हिम्मत कर सकता है और वह रूप है– काम और मजदूरी के रूप में भोजन का बचन।'' (निर्मल कुमार बोस : सलेक्सन फ्रॉम गांधी)

पश्चिम के अर्थशास्त्री आज पूरे काम या पूरी रोजी के इस आदर्श को योजनाबद्ध आर्थिक विकास की आधारशिला मानते हैं विशेषतः अर्द्धविकसित देशों के लिए, जिनकी जनसंख्या बढ़ी है और दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। प्रो० ग्रेलब्रेइथ इस मत के हैं– ''बेकारी के साथ जुड़े हुए अधिक उत्पादन की अपेक्षा सब लोगों को पूरा काम देना अधिक वांछनीय है।'' (दि एंफ्लुएंट सोसाइटी)

ग्रामीण सामाजिक ढांचे में खेतिहर मजदूरों का वर्ग सबसे ज्यादा दलित, उपेक्षित एवं शोषित है। स्वतंत्रता से पूर्व इनकी स्थिति गुलामों जैसी ही थी। इनको अपने मालिक के घर एवं खेतों पर रात–दिन काम करना पड़ता था। वह वर्ग सामाजिक रूप से बिखरा हुआ एवं आर्थिक रूप से शोषित था। मालिकों की बात कभी किन्हीं कारणों से नहीं मानने की स्थिति में इन्हें मारा–पिटा जाता था और इन्हें तरह–तरह से तंग किया जाता था। इन लोगों को छोटे–छोटे कर्ज देकर जमींदार उन्हें अपने शिकंजे में जकड़ लेते थे और फिर उन्हें अपना गुलाम बना लेते थे। यह गुलामी पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलती रहती थी।

यह सच है कि आजादी के बाद से खेतिहर मजदूरों की स्थिति अब गुलामों जैसी नहीं है। ग्रामीण विकास, निर्धनता निवारण, रोजगारपरक योजनाओं के क्रियान्वयन एवं शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा एवं आवास की पूर्त्ति के प्रति सरकार की बढ़ती दिलचस्पी के कारण उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में बदलाव के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगे हैं और अब वह अमानवीय शोषण के शिकार नहीं हैं। परन्तु इस सच्चाई से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि खेतिहर मजदूर ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी सबसे अधिक गरीब, पिछड़ा एवं अपेक्षित वर्ग है और उनका आर्थिक शोषण जारी है। अभी भी उनका आय–स्तर बहुत ही निम्न एवं गुजारा के लिए नाकाफी है। उनका उपयोग स्तर निम्न है। कृषि क्षेत्र में व्याप्त बेरोजगारी और वैकल्पिक रोजगार के अभाव के कारण खेतिहर मजदूरों का भू–स्वामियों द्वारा आर्थिक शोषण जारी है।

सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास की संकल्पना को साकार करना भारतीय आयोजन का मूल दर्शन रहा है। रोहतास बिहार का एक कृषि प्रधान जिला है। सोन नदी पर नहरों के बीछे जाल ने इसे 'धान का कटोरा' बना दिया है लेकिन यहाँ के खेतिहर मजदूों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति भी कमोवेश अन्य क्षेत्रों के

खेतिहर मजदूरों जैसी ही हैं। यह सच है कि बेवश एवं लाचार लोगों की जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए सरकार द्वारा बहुत सी नीतियाँ एवं कार्यक्रम बनाए गये हैं लेकिन इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि हमारे यहाँ इनके उन्नयन के लिए बनाई गई नीतियाँ एवं कार्यक्रम अन्य राज्यों की तुलना में कम सफल या असफल होते रहे हैं। आवश्यकता है गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करने की नीतियों को अधिक सफल बनाने के उपायों पर प्रकाश डालने के साथ ही इन नीतियों एवं कार्यक्रमों में रह गये उन छिद्रों को भरने की जिसके कारण ये सफल नहीं हो पाते हैं। साथ ही आवश्यकता है इस वर्ग के लिए ऐसे अपेक्षित नीतियों एवं कार्यक्रमों को तैयार करने और उन्हें अमली जामा पहनाने की जिससे उनकी जिंदगी को खुशहाल एवं बेहतर बनाया जा सके तथा इन्हें समाज में सम्मान के साथ जीने का हक मिल सके।

गरीबी एवं बेरोजगारी अभिशाप के साथ एक सामाजिक कलंक भी हैं। खेतिहर मजदूरों के बीच गरीबी एवं बेरोजगारी की जड़ें काफी गहरी है। सरकार द्वारा खेतिहर मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम एवं योजनाएँ तैयार की गई हैं और उन्हें कार्यान्वित भी किया जा रहा है, लेकिन इन योजनाओं के अपेक्षित लाभ इस वर्ग तक नहीं पहुँच पाता है। सरकार योजनाओं एवं कार्यक्रमों में रह गये छिद्रों की तलाश करके और इन छिद्रों को भरने के उपायों पर प्रकाश डालकर, योजनाओं को अधिक सफल बनाया जा सकता है तथा इसका अपेक्षित लाभ वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँचाया जा सकता हैं खेतिहर मजदूरों की संख्या में बढ़ोतरी के लिए उत्तरदायी स्थितियों को समाप्त कर, खेतिहर मजदूरों के प्रति सरकार की सकारात्मक सोच, लोक सेवकों की ईमानदारी, कोशिश, मिडिया के अपेक्षित सहयोग एवं समाज के प्रबुद्ध एवं सतत् जागरूक लोगों के सामूहिक प्रयास से खेतिहर मजदूरों की समस्याओं से निजात पाया जा सकता है और उनके जिंदगी में नई आशा एवं विश्वास की किरणें प्रस्फुटित हो सकती हैं। ●

रोहतास जिला में

बाल श्रम का स्वरूप, समस्याएँ एवं चुनौतियाँ

श्रीमती संगीता कुमारी

शोध-छात्रा
ए.एस. कॉलेज, बिक्रमगंज

रोहतास की धरती को प्रकृति ने विविध रूपों–पर्वत, झरने, बलखाती नदियाँ, उपजाऊ समतल मैदान से सजाया एवं संवारा है। दक्षिण में वनों से आच्छादित कैमूर पर्वत श्रृंखला में गंधक, बॉक्साइट, चूना–पत्थर, गेरू पत्थर के विशाल भंडार हैं तो उत्तर पूरब और उत्तर पश्चिम में सोन नदी पर आधारित नहरों के बिछे जाल ने इसे धान का कटोरा बना दिया है। 2011 की जनगणना के अनुसार रोहतास, बिहार राज्य का 29,62,593 (उनतीस लाख बासठ हजार पाँच सौ तिरानबे) आबादी वाला एक कृषि प्रधान जिला है जहाँ आबादी का एक बड़ा हिस्सा (लगभग 78 प्रतिशत) अपनी आजीविका के लिए मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर रहता है।

छः दशकों की लम्बी विकास यात्रा, विकास योजनाओं एवं कार्यक्रमों, विधि निर्माण एवं प्रशासनिक प्रयासों के उपरान्त भारत में अधिकांश गरीब परिवार के बच्चे दुःख और कष्ट में रह रहे हैं। वे अपने माता–पिता की उपेक्षा के शिकार हैं। देखभाल करने वाले ही उन्हें मारते–पीटते हैं और मालिकों द्वारा बच्चों के साथ शारीरिक, मानसिक एवं लैंगिक दुर्व्यवहार किया जाता है।

बाल श्रमिकों के आंकड़ों पर नजर डालने पर पता चलता है कि दुनियां में सबसे अधिक बाल श्रमिक भारत में हैं। संभवतः देश, राज्य एवं जिला का कोई ऐसा व्यवसाय नहीं है जहाँ बाल श्रमिकों को न लगाया जाता हो। परिणामस्वरूप बच्चे अपने स्वतंत्र एवं खुशहाल बचपन के अधिकार से वंचित रह जाते हैं। बिहार में कालीन उद्योग, माचिस बनाना, बीड़ी, पत्तल, हौजरी, हथकरघा, कढ़ाई, खेल के समान बनाना, अगरबती, मोमबती, पापड़, आचार बनाने के कार्य, मोटर गैरेज में काम, ईट भट्ठों, स्टोन चिप्स तथा कृषि कार्यों से संबंधित कार्यों में बाल श्रमिकों की बड़ी तादाद देखने को मिलती है। इन व्यावसायिक स्थलों पर न केवल भोजन, पानी, आवास, शिक्षा एवं मनोरंजन के साधनों का अभाव रहता है, बल्कि उन्हें अस्वस्थ्यकर वातावरण में कार्य करना पड़ता है। इन कार्य स्थलों पर उनका भावात्मक एवं यौन उत्पीड़न भी होता है। इस कारण उनका बचपन पूरी तरह बर्बाद हो जाता है। वयस्क होने पर इन बच्चों को अशिक्षा, खराब स्वास्थ्य और हीन भावना विरातस में मिलती है। खतरनाक रोग के शिकार हो जाते हैं और कुपोषण की मार उन्हें झेलनी पड़ती है।

भारत में बाल श्रम का मुख्य कारण उनके माता–पिता के बीच अशिक्षा, गरीबी एवं बेरोजगारी का होना है। हमारे राज्य बिहार एवं जिला रोहतास में तो कई गरीब परिवारों के लिए उनके बच्चे ही आय के मुख्य स्रोत हैं जो मजदूरी करके अपने परिवार का पेट पालते हैं। अतः बच्चा 10 से 12 साल की उम्र से ही गरीबी एवं अशिक्षा की मार झेलने लगता है।

रोहतास जो बिहार का एक कृषि प्रधान जिला है। यहाँ पर कृषि, बागवानी, पशुपालन, होटल व्यवसाय, मोटर गैरेज, घरेलू नौकर, ईट

भट्ठा के कार्यों में बाल श्रमिक बड़े–बड़े पैमाने में देखने को मिलते हैं। बाल श्रम के इन कार्य क्षेत्रों में उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा, शुद्ध पेयजल एवं मनोरंजन की सुविधाओं की कोई व्यवस्था नजर नहीं आती है। विडम्बना तो यह है कि श्रम निरीक्षक, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रोनिक मीडिया, समाज सेवी संस्थाएँ एवं समाज के सतत् जागरूक एवं प्रबुद्ध जन इन नौनिहालों की समस्याओं से बेखबर या बेपरवाह हैं। क्या ये नौनिहाल सुन्दर किन्तु बेवश एवं लाचार मछली की तरह तड़पते रहेगें और अर्थशास्त्री तथा समाजशास्त्री तमाशबीन बने रहेगें?ये बच्चे श्रम निरीक्षकों, समाज सेवी संस्थाओं, प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया, समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, समाज के प्रबुद्ध, सजग, सचेत एवं बेहतर समाज की कल्पना करने वालों लोगों से पूछना चाहते हैं कि मेरा खोया हुआ बचपन लौटाओगें भी या नहीं?

इस शोध–कार्य के द्वारा रोहतास जिला में कृषि, बागवानी, पशुपालन, ईट–भट्ठों तथा विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक केन्द्रों जैसे होटल, मोटर गैरेज, अगरबती, मोमबती, चटनी, पापड़े, आचार, बीड़ी बनाने के कार्य इत्यादि में लगे बाल श्रमिकों की तलाश एवं पहचान करने का कार्य किया जाएगा। साथ ही बाल श्रमिक की समस्या के कारणों की जाँच–पड़ताल करने का प्रयास किया जाएगा। इस शोध–कार्य के द्वारा रोहतास जिला के बाल श्रमिकों की उन अनुत्तरित प्रश्नों का जवाब दिया जाएगा जो उत्तरित होने की अपेक्षा रखती हैं।

चावल उद्योग की
समस्याएँ एवं संभावनाएँ

धान कटोरा क्षेत्र (जिला–रोहतास, सासाराम) पर आधारित एक वैयक्तिक अध्ययन

सुश्री श्वेता निशा

शोध-छात्रा
ए.एस. कॉलेज, बिक्रमगंज

रोहतास की धरती को प्रकृति ने विविध रूपों में सजाया एवं संवारा है। पर्वत, झरने, नदियाँ, समतल उपजाऊ मैदान, वन एवं खनिज सम्पदा जैसे प्राकृतिक उपहारों से परिपूर्ण किया हैं उत्तर में उर्वरा शक्ति से भरपूर समतल मैदान तो पूरब में सोन नदी पर आधारित नहरों के बीछे जाल ने इसे धान का कटोरा बना दिया है। दक्षिण में वनों से आच्छादित कैमूर पर्वत श्रृंखला में छिपे खनिज सम्पदा के विशाल भण्डार ने औद्योगिक विकास को खुला आमंत्रण दे रखा है।

यहाँ की कृषि न केवल आजीविका का सबसे बड़ा स्रोत है बल्कि आय एवं रोजगार का मुख्य आधार भी है। लोग अपनी आजीविका के लिए मुख्य रूप से कृषि कार्य पर ही आश्रित रहते हैं। यहाँ खाद्यान्न तथा व्यावसायिक दोनों प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है लेकिन यह क्षेत्र खाद्यान्न फसलों के क्षेत्र में अग्रणी है और मुख्य रूप से चावल एवं गेहूँ के उत्पान के लिए जाना एवं पहचाना जाता है। यहाँ की धरती धान (चावल) की न केवल इतनी उपज देती है कि यहाँ के लोगों का भरण–पोषण हो सके बल्कि इससे राज्य की आवश्यकता की भी पूर्ति होती है तथा चावल का विदेशों में निर्यात भी किया जाता है।

धान की प्रचुर मात्रा में उपज ने चावल उद्योग (राइस मिलों) को आकर्षित किया है। यही कारण है कि यहाँ राइस मिलों का बड़े पैमान पर संकेन्द्रण हुआ है। यहाँ की राइस मिलों का न केवल बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है बल्कि यह हजारों लोगों की आजीविका एवं रोजगार सृजन का स्रोत भी है। वर्तमान समय में लगभग 1500 (एक हजार पाँच सौ) चावल उद्योग की इकाईयाँ हैं जहाँ हजारों की संख्या में असंगठित क्षेत्र के मजदूर कार्य करते हैं।

यहाँ चावल उद्योग (राइस मिलों) को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है जिनमें कच्चे माल का अभाव, पूँजी का अभाव, ऊर्जा संसाधनों की कमी, परिवहन समस्या, आधुनिकीकरण का अभाव, श्रम समस्या, मूल्य स्थिरता की समस्या, अनुसंधान, प्रशिक्षण एवं विशेषज्ञीय सुविधा का अभाव प्रमुख है। इन कारणों से उद्योग की इकाईयाँ अपनी उत्पादन क्षमता का कम ही उपयोग कर पाती है और गुणवतायुक्त उत्पादन नहीं कर पाती है जिससे विश्व बाजार में इनका बने रहना संभव नहीं हो पाता है साथ ही अपने उत्पादन का इन्हें लाभकारी मूल्य भी नहीं मिल पाता है।

21वीं शदी का विश्व पटल उदारीकरण, भूमण्डलीकरण और आधुनिकीकरण की चकाचौंध रोशनी से नहाया हुआ है। उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारीकृत यांत्रिक व्यवस्था में सब कुछ बदल रहा है। परिवर्त्तन का दौर चल रहा है। अनेक तरह की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ दस्तक दे रही हैं। घरेलू बाजार एवं विश्व बाजार में टिके रहने के लिए आवश्यक है कि उद्योग द्वारा गुणवत्तायुक्त विश्व स्तरीय उत्पादन का निर्माण किया जाय।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में उद्योग की वर्त्तमान समस्याओं से निजात पाना आवश्यक है साथ ही उन संभावनाओं की तलाश करना भी आवश्यक है जिससे इन उद्योगों का कार्य सम्पादन बेहतर हो सके और ये घरेलू बाजार तथा विश्व प्रतिस्पर्द्धात्मक बाजार में टिके रहने लायक गुणवत्तायुक्त उत्पाद का निर्माण कर सके। ऐसा करके उद्योग न केवल मानवता की सेवा करने में सहायक सिद्ध होगा बल्कि राष्ट्रीय समृद्धि में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा। इस उद्योग के बेहतरी के लिए वित्तीय एवं बैंकिंग संस्थाओं की अपेक्षित सहयोगात्मक नीति की भी आवश्यकता होगी।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में चावल उद्योग (राइस मिलों) की समस्याओं की खोज करने और उन संभावनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जायेगा जो उद्योग के बेहतरी के लिए सार्थक सिद्ध होंगें।

Modernism : A post-Darwinian Phenomenon, explaining Mankind's position in this Alien Universe

Prabhat Kumar

Assistant Professor
Department of English
A.S. College, Bikramganj.

Introduction to Modernism

Modernism is a philosophical movement that, along with cultural trends and changes, arose from wide-scale and far-reaching transformations in Western society in the late 19th and early 20th centuries. Among the factors that shaped Modernism were the development of modern industrial societies and the rapid growth of cities, followed then by the horror of World War I. Modernism also rejected the certainty of Enlightenment thinking, and many modernists rejected religious belief. Modernism, in general, includes the activities and creations of those who felt the traditional forms of art, architecture, literature, religious faith, philosophy, social organization, activities of daily life, and even the sciences, were becoming ill-fitted to their tasks and outdated in the new economic, social, and political environment of an emerging fully industrialized world. The poet Ezra Pound's 1934 injunction to "Make it new!" was the touchstone of the movement's approach towards what it saw as the now obsolete culture of the past. In this spirit, its innovations, like the stream-of-consciousness novel, atonal (or pantonal) and twelve-tone music, divisionist painting and abstract art, all had precursors in the 19th century.

A notable characteristic of Modernism is self-consciousness and irony concerning literary and social traditions, which often led to experiments with form, along with the use of techniques that drew attention to the processes and materials used in creating a painting, poem, building, etc. Modernism explicitly rejected the ideology of realism and makes use of the works of the past by the employment of reprise, incorporation, rewriting, recapitulation, revision and parody.

Some commentators define Modernism as a mode of thinking—one or more philosophically defined characteristics, like self-consciousness or self-reference, that run across all the novelties in the arts and the disciplines. More common, especially in the West, are those who see it as a socially progressive trend of thought that affirms the power of human beings to create, improve and reshape their environment with the aid of practical

experimentation, scientific knowledge, or technology. From this perspective, Modernism encouraged the re-examination of every aspect of existence, from commerce to philosophy, with the goal of finding that which was 'holding back' progress, and replacing it with new ways of reaching the same end. Others focus on Modernism as an aesthetic introspection. This facilitates consideration of specific reactions to the use of technology in the First World War, and anti-technological and nihilistic aspects of the works of diverse thinkers and artists spanning the period from Friedrich Nietzsche (1844-1900) to Samuel Beckett (1906-1989).

Key ideas of Modernism

Modernism is a literary and cultural international movement which flourished in the first decades of the 20^{th} century. Modernism is not a term to which a single meaning can be ascribed. It may be applied both to the content and to the form of a work, or to either in isolation. It reflects a sense of cultural crisis which was both exciting and disquieting, in that if opened up a whole new vista of human possibilities at the same time as putting into question any previously accepted means of grounding and evaluating new ideas. *Modernism* is marked by experimentation, particularly manipulation of form, and by the realisation that knowledge is not absolute.

Modernism is one of the key words of the first part of the 20^{th} century. Among its influences were the psychological works of Sigmund Freud and the anthropological writings of Sir James Frazer, author of *The Golden Bough* (1890 - 1915), a huge work which brought together cultural and social manifestations from the universe of cultures.

"*Modernism* is essentially post-Darwinian: it is a search to explain mankind's place in the modern world, where religion, social stability and ethics are all called into question." (321, *The Routledge History of English Literature)*

Marx and Darwin had unsettled men from their secure place at the centre of the human universe. Their theories threatened humanist self-confidence and caused a feeling of ideological uncertainty. Darwin in his conception of evolution and heredity had situated humanity as the latest product of natural selection.

Major themes of Modern Literature

A tension in writing between the popular and the esoteric, and the popular and specialised, the commercial and the avant-garde, become a feature of modern literature. Isolation and alienation, together with experimental forms of cultural expression, came to characterise serious literature, while cinematic techniques and the elaboration of popular genres came to dominate other forms of cultural expression. To some writers, the alienation they felt and depicted was an exploration of the individual sensibility in a world which it was felt was becoming ever more standardised and uniform, an age of the masses.

Modern literature, however, is characterised by cultural alienation, scepticism, self-doubt, over-consciousness and pessimism caused by industrialisation and World War - I. The new scientific theories and inventions also made a great impact on the psyche of modern man and hence began an age where religion was by and large discarded under the charms of science and technology and man began to equate himself with the stature of God. *On the Origin of Species* (1859), written by Charles Darwin, divided the world into two binaries - science and religion. For the first time, Christianity was attacked so vehemently. Modern literature objectively reflects such cultural and religious confusion with a note of pessimism.

T. S. Eliot's *The Hollow Men*

Very few poems in Modern literature reflect as aptly and accurately the utter despair and moral emptiness of the modern world as Eliot's *The Hollow Men.* The poem portrays a poetic consciousness in which intense nostalgia for a

state of heavenly purity conflicts with the paradoxical search for a long-lasting form of order through acts of denial and alienation. To the common observation that *The Hollow Men* expresses the depths of Eliot's despair, one must add that the poet in a sense 'chooses' despair as the only acceptable alternative to the unauthentic existence of the unthinking inhabitants of the waste land.

The Hollow Men echoes the moral, cultural and religious crisis of the modern world, caused by the materialistic forces of life.

> "Shape without form, shade without colour,
>
> Paralysed force, gesture without motion;" (Eliot's *The Hollow Men)*

The emptiness of life has been depicted throughout the poem. A man bereft of his cultural and religious values seems just *a shape without form,* and his *motion* is *paralysed.* Eliot constructs a desolate world, *death's dream kingdom,* to explain mankind's position in this alien universe. The focus of the poem is on the hollow men's inability to interact with each other and with the transcendental spirituality that is their only hope. The hollow men represent all humankind, and their tragic existence in the modern world. The *Paralysed force, gesture without motion* applies not only to the men themselves but also to the poem as. a whole, which exhibits little narrative progression in the conventional sense and avoids verbs of direct action.

"We whisper together Are quiet and meaningless"

"We grope together And avoid speech" (Eliot's *The Hollow Men)*

As the hollow men grope together and whisper meaninglessly, so the poem itself gropes toward a conclusion only to end in hollow abstraction, broken prayer and the meaningless circularity of a children's rhyme. The conscious reduction of poetic expression to a bare minimum does away with metaphor and simile and produces a final section of the poem almost completely devoid of modifiers. In modern existential terms as well as those of traditional Christianity, the Negative Way leads eventually to an encounter with nihilism which, paradoxically, can inspire the individual with faith in God.

The Hollow Men explores this boundary situation in its images of finality or extremity and in a thematic structure comprising two different states of being. The poem's speaker anticipates with dread *that final meeting;* the men grope together *in this last of meeting places;* the final section, in its generalised abstraction of all that has gone before, tells us that:

This is the way the world ends,

Not with a bang but with a whimper.

(Eliot's *The Hollow Men)*

Our condition as human beings is doomed, our fate is unfortunately tragic, but the only guiltiest will be us if we cannot prevent ourselves from being *the hollow men, the stuffed men.*

Conclusion

Modernism, thus, laments over the loss of cultural, moral and religious values and places **mankind** as **an** alien **figure in this modern world.** The growth of industrialisation, urbanisation, science and technology marked a sharp break with tradition and the slavish adherence to the authority of faith and religion. It celebrates the forces of materialism and science. It glorifies the power of man and registers the crisis and moral confusion which were the consequences of the socio-political happenings of the time. It also reflects a multidimensional growth. It seeks its strength from its soil that is brought not from the Mars but from this planet on which live humans, beasts, trees and plants. The modern literature aims to provide solution to the problems of the common man. It investigates the deep-seated social maladies by bringing into focus the ordinary lives of the people who are either middle-class or the marginalised and the under-dog. Moreover, it defines the predicament of a modern man who no longer has faith in his religion and culture, and thus has become an alien

आलेख
उपन्यास-लेखन

डॉ० ललन प्रसाद सिंह

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
ए. एस. कॉलेज, बिक्रमगंज

उपन्यास साहित्य की एक सर्वाधिक सशक्त विधा के रूप में अपने को आज स्थापित कर लिया है। हमारे साहित्य के सिद्धांतकार तथा साहित्यशास्त्रियों ने अपने–अपने मतानुसार उपन्यास को परिभाषित करने की अनेक चेष्टाएँ की हैं। इस बहुपठनीय विधा की कोई मुकम्मल परिभाषा बना लेना आसान नहीं हैं। वजह कि उन्यास एक अति जटिल विधा है। जब सत्ता की संरचना ही जटिल होती जा रही हैं, तब साहित्य भला सुगम और सरल कैसे बना रहेगा। यह हमें कदापि नहीं भूलना चाहिए कि जैसे–जैसे युग की प्रवृतियाँ बदलती हैं. वैसे–वैसे साहित्य की प्रवृत्तियों में बदलाव आना लाजिमी हो जाता है। परिस्थितियों का क्रूर दबाव तथा उस दबाव से मानव जाति की मुक्ति की छटपटाती आकांक्षा और साकार रूप देने का प्रबल संघर्ष साहित्य की अन्तर्वस्तु, उसकी भाषा, शैली तथा उसके निहितार्थ को ही परिवर्तित करके रख देता है। संभवतः इसीलिए हम पाते हैं कि राजतंत्रीय व्यवस्था में ज्यादातर महाकाव्य ही लिखे गए। आधुनिक युग के आगमन के साथ ही उपन्यास–लेखन की शुरूआत होती है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन की विविधताएं, उनके अन्तर्विरोध, सामाजिक कुरीतियों, अन्यायपूर्ण सत्ता का प्रतिकार, सत्य एवं यथार्थ, जीवन को बेहतर बनाने की जद्दोजहद, सामूहिक प्रयत्न, तथ्य एवं तर्क पर आधारित चिन्तन, विज्ञानसम्मत चिन्तनधारा, नए–नए अनुसंधानों पर अवलम्बित दर्शन–धारा आदि की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास विधा का ही चयन किया गया है। हम कह सकते हैं कि उपन्यास व्यक्ति एवं व्यवस्था की संगति–विसंगति, समन्वय–संघर्ष, मानव तथा प्राणियों की प्रकृति, स्वभाव, रूप–सौंदर्य, उनके ज्ञान, इच्छा तथा कर्म, सामाजिक संरचना और उसके क्रिया–कलाप, प्रकृति के आकर्षण तथा उसकी सुन्दरता, पारस्परिक रिश्ते तथा द्वन्द्व भाव, विचार और क्रमिक लक्ष्य व उद्देश्य, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक कार्यक्रम, बेहतरीन अवस्था में पहुँचने का संकल्प तथा कार्यान्वयन आदि की समालोचनात्मक लिपिबद्ध अभिव्यक्ति है। इन दिनों उपन्यास ने बहुत लोकप्रियता हासिल कर ली है। हिन्दी के युगांतकारी उपन्यासकार प्रेमचन्द लिखते हैंः ''समाज, नीति, विज्ञान, पुरातत्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है। यहाँ लेखक को अपनी कलम का जौहर दिखाने का जितना अवसर मिल सकता है, उतना साहित्य के और किसी अंग में नहीं मिल सकता।''

जैसे शरीर की रचना अनेक तत्वों के मेल से होती है, वैसे ही उपन्यास की रचना भी कतिपय तत्वों के योग से होती है। कुछ तत्व हैं, जो अब सर्वमान्य हो चुके हैं, यथा– (1) कथानक या वस्तु। (2) पात्र (3) परिवेश, स्थान तथा समय (काल) (4) संवाद (5) भाषा और शैली (6) जीवन–दर्शन व उद्देश्य । किसी भी क्लासिक उपन्यास को आप अद्योपांत पढ़ जाइए, उसमें ये छः तत्व आपको निश्चित तौर से मिल जाएंगे। समाज, राष्ट्र तथा विश्व में अनेक प्रकार की घटनाएं घटित होती हैं। मनुष्य को भी अपनी जिंदगी में विविध तरह की घटनाओं से गुजरना पड़ता है, सचेत होकर या प्रेरित होकर। घटनाओं का क्रम तथा नैरंतर्य कथा, उपकथा का रूप अख्तियार कर लेता है। घटनाएं तो बिना कारण के घटती नहीं है। घटनाओं

में कुछ कार्य होते हैं, चाहे शुभ हों या अशुभ, चाहे हिंसक हों या अहिंसक, चाहे सृष्टि हो या विनाश, चाहे मंगलकारी हो या अमंगलकारी, कुछ–न–कुछ कार्य होता ही है। और उनके अपने कारण भी होते हैं। कारण और कार्य को विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। जिनको मानव जाति के इतिहास का बोध नहीं होता, वे कहते हैं कि मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। वे भूल जाते हैं कि वह मनुष्य ही है, जो दमनकारी परिस्थितियों से टकराते हुए, उसे बदलने के लिए अपनी सारी ताकत झोंक देता है– अपने वर्तमान के अस्तित्व के लिए तथा सुखद भविष्य की निर्मिति के लिए। करीब–करीब सारे महाकाव्यों में आप हिंसक युद्ध देखते होंगे, साथ–ही–साथ प्रेम–प्रसंग भी। कहना ही होगा कि अब उपन्यास महाकव्य की जगह ले लिया है। घटनाएं तथा समस्याएं, इनके संबंध में मनुष्य का चिंतन, उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया आदि एक मुकम्मल कहानी का रूप ले लेते हैं। मानव घटनाओं का भागीदार, भोक्ता तथा दर्शक व निरीक्षक होता है। ये ही सब मिलकर कथावस्तु बनती है, जो उपन्यास की आधारभूत संरचना तथा मुख्य तत्व है। पात्र को चरित्र भी कहने की परिपाटी है। नायक और नायिका उसी के अन्तर्गत आते हैं। कार्य–व्यापार तथा वैचारिकी से मनुष्य के व्यक्तित्व की पहचान होती है। हमारा समाज बहुवर्णीय, बहुजातीय, बहुभाषीय तथा बहुसंस्कृतीय है। अनेक प्रकारके पेशा तथा श्रेणी व स्तर के लोग हैं। आर्थिक क्रिया–कलाप, चाहे जिस रूप में हो, जिन्दगी की पहली शर्त है। इसके वगैर जिन्दगी का अस्तित्व बरकरार रखना असंभव है। इसी क्रम में मनुष्य एक दूसरे से संबंध बनाते हैं। उनके सामाजिक और आर्थिक रिश्ता बनता है। सबका कार्य और उद्देश्य अलग–अलग होते हैं। नायक और खलनायक की जो बात की जाती है, उसका आधार कार्य और उद्देश्य ही है। सहायक पात्र भी होते हैं, जो प्रसंगवश आ जाते हैं और कथा क्रम को आगे बढ़ाते हैं। उत्पीड़क खलनायक होता है, जबकि लोगों को उत्पीड़न से निस्तार दिलाने वाले नायक होते हैं, यह कोई जरूरी नहीं कि किसी महान उद्देश्य को लेकर कोई महान नायक उपन्यास में आ जाए। सामान्य जन के जीवन, उसके कार्य, उसके भाव–विचार को लेकर भी सफल उपन्यास लिखा जाता है। सामान्य जन अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करते हैं। नागरिक, समूह तथा सत्ताकेन्द्रों के बीच संघर्ष भी चलता है।

एक पीएच.डी. के शोधार्थी ने मुझसे सलाल किया कि मैं उपन्यास कैसे लिखता हूँ। उसकी जिज्ञासा तो शांत करनी ही थी। यह तो साहित्य एवं भाषा के एक प्रोफेसर का कर्त्तव्य ही है। सो, किया । यहाँ मैं साहित्य–अध्येताओं से सीधे रू–ब–रू होना चाहता हूँ। उपन्यास–लेखन किसी खास ढ़ांचे और सांचे में शायद ही लिखा जाता है। विषय–वस्तु तथा पात्रों के अनुसार उपन्यास–लेखन की टेकनीक स्वयं बदल जाती है। या बदलनी पड़ती है। फिर भी हमारे साहित्य–शास्त्रियों ने उपन्यास–लेखन के कुछ तरीकें निर्धारित किए हैं, जिन्हें हम शैली कहते हैं। एक कहावत है कि दी स्टाइल इज दी मैन। जो भी हो । भाषा और शैली से आप लेखक को पहचान सकते हैं। उपन्यास–सृजन की शैलियों के कुछ प्रकार हैं, जैसे–विवेचनात्मक, आत्मकथात्मक, जीवनी, दैनन्दिनी, पत्रात्मक तथा संयुक्त शैली। लेकिन व्यवहार में देखने को मिलता है कि रचनाकार उपन्यास में विविध शैलियों का इस्तेमाल करने से अपने को रोक नहीं पाते हैं।

प्रेमचंद कृत 'गोदान' वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है, जिसका प्रारंभ नायक होरी के संवाद से होता है और अंत भी नायिका धनिया के कथन से ही होता है।

शेष अगले अंक में...

महाविद्यालय में
राष्ट्रीय सेवा योजना के बढ़ते कदम

डॉ० राज बहादुर राय

कार्यक्रम पदाधिकारी सह विभागाध्यक्ष,
राजनीति शास्त्र, ए.एस. कॉलेज, बिक्रमगंज

राष्ट्रीय सेवा योजना की स्थापना छात्र–छात्राओं को सामाजिक जिम्मेवारी के तहत राष्ट्र सेवा के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से की गई। महात्मा गाँधी के समय से ही राष्ट्रीय सेवा योजना की बात चली आ रही है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष के रूप में डॉ० राधा कृष्णन ने शैक्षणिक संस्थानों में स्वैच्छिक रूप से राष्ट्रीय सेवा योजना की शुरूआत की स्वीकृति प्रदान की ताकि महाविद्यालय परिसर यानि कि छात्र एवं शिक्षक तथा समुदाय यानि कि ग्रामीण जनता के बीच रचनात्मक सम्पर्क स्थापित किया जा सके। 24 सितम्बर 1969 में तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ० बी. के. आर. वी. राव ने विभिन्न राज्यों के 34 विश्वविद्यालयों में एन.एस. एस कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। इस कार्यक्रम को महात्मा गाँधी के जन्म शताब्दी वर्ष में शुरूआत करने के पीछे उद्देश्य यह था कि महात्मा गाँधी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता एवं दलितों के सामाजिक उत्थान के आन्दोलन में युवाओं को भाग लेने को प्रेरित किया।

राष्ट्रीय सेवा योजना का मुख्य उद्देश्य है समाज में जो हम कार्य करते हैं, के बारे में जानकारी प्राप्त करना एवं उस समाज के सापेक्ष अपने आपको बनाना है। राष्ट्रीय सेवा योजना का लक्ष्य वाक्य है– मुझको नहीं तुमको (Not Me But you) औपचारिक रूप से एम.एस. एस. की शुरूआत 24 सितम्बर 1969 को किया गया था। अतः प्रत्येक वर्ष 24 सितम्बर को एन.एस.एस. दिवस को उचित कार्यक्रमों एवं गतिविधियों के साथ मनाया जाता है। छात्र, शिक्षक एवं समाज इन्हीं तीनों को राष्ट्रीय सेवा का मूल भूत तत्व/अवयव कहा गया है।

एन.एस.एस. कार्यक्रम पदाधिकारी जो शिक्षक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं युवाओं छात्र स्वयं सेवकों में नेतृत्व क्षमता प्रदान करते हैं वे संस्थान एवं समाज के नैतिक मूल्य एवं आदर्श के प्रतीक के रूप में कार्य करते हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना को सक्रियता प्रदान करने के लिए कार्यक्रम पदाधिकारी नियुक्त किया गया है। ए.एस. कॉलेज विक्रमगंज में महाविद्यालय स्तर पर एन.एस.एस. के कार्यक्रमों के आयोजन हेतु सलाहकार समिति का गठन किया गया है जिसके पदेन अध्यक्ष प्रधानाचार्य हैं।

ए.एस. कॉलेज विक्रमगंज में राजीव गाँधी सद्भावना दिवस मनाया गया जिसकी अध्यक्षता प्रधानाचार्य ने किया। संचालन कार्यक्रम पदाधिकारी डॉ० रामबहादुर राय ने किया। राजीव गाँधी पर व्याख्यान प्रो० शम्भु शंकर सिंह विभागाध्यक्ष बॉटनी ने किया। इस अवसर पर पत्रकार चन्द्रमोहन चौधरी उपस्थित थे। स्वयं सेवकों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। 8 सितम्बर विश्व साक्षरता दिवस मानाया गया अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति दिवस 15 सितम्बर 2012 को मनाया गया। N.S.S. Day 24 सितम्बर को मनाया गया। राष्ट्रीय रक्तदान दिवस 1 अक्टूबर को मनाया गया। विवेकानन्द जयन्ती दिवस मनाया गया।

World Aids Day 1 दिसम्बर 2012 को मनाया गया। जिसमें

राष्ट्रीय सेवा योजना के स्वयं सेवकों ने बैनर के साथ जूलूस निकाला जो ए.एस. कॉलेज विक्रमगंज परिसर से चलकर विक्रमगंज चौक तक मार्च किया जिसकी अगुवाई कार्यक्रम पदाधिकारी डॉ० राज बहादुर राय ने किया। ए.एस. कॉलेज विक्रमगंज ने सात दिवसीय आवासीय शिविर लगाया जो सार्वजनिक मध्य विद्यालय धारूपुर में लगाया गया। यह सात दिवसीय आवासीय शिविर 21 मार्च 2013 से 27 मार्च 2013 तक सक्रिय रहा। सात दिवसीय आवासीय शिविर का आयोजन जो 21 मार्च 2013 को हुआ जिसका उद्घाटन बी.के.एस.यू. समन्वयक डॉ० प्रसुन्जय कुमार सिन्हा ने किया। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि नगरपंचायत उपाध्यक्ष वीरेन्द्र सिंह, कंचन देवी, प्रो० संतोष सिंह, प्रो० कन्हैया राय, प्रो० शम्भु शंकर सिंह उपस्थित थे। 50 एम.एस.एस. स्वयं सेवकों ने भाग लिया। इस अवसर पर महात्मा गाँधी कॉलेज लहराबाद के एन.एस.एस. कार्यक्रम पदाधिकारी भी उपस्थित थे। प्रधानाचार्य ने सभा की अध्यक्षता भाषण में कहा कि स्वयं सेवकों को राष्ट्र सेवा एवं दलितों की सेवा के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए। संचालन डॉ० राजबहादुर राय ने किया। सात दिवसीय शिविर का उद्घाटन दीप जलाकर वी.के.एस.यू. एन.एस समन्वयक डॉ० प्रसन्जय कुमार सिंह ने किया। स्वागत गान बी.ए. पार्ट–II की छात्र एन.एस.एस. स्वयं सेवक ने किया। छात्र, छात्राओं (स्वयं सेवकों ने) सांस्कृतिक कार्यक्रम जोरदार किया। अपने उद्घाटन भाषण में डॉ० प्रसुन्जय कुमार सिन्हा ने राष्ट्रीय सेवा योजना के स्वयं सेवकों को जनहित के लिए तत्पर रहने का संदेश दिया। सांस्कृतिक कार्यक्रम गीत गाया– चन्दन कुमार, चन्द्रमोहन कुमार मंटू, दिव्य ज्योति, सोन पान्डे। प्रियंका कुमारी, गीता कुमारी, निवजी पंडित आदि ने किया। सात दिवसीय शिविर सात दिनों तक चलता रहा। जो धारूपुर गाँव में घुम–घुम कर गलियों की सफाई, मुर्गा–मुर्गी का सर्वेक्षण, जानवरों का सर्वेक्षण, वृक्षारोपण किया। 27 मार्च 2013 को सात दिवसीय शिविर के समापन सभा आयोजन किया गया। उक्त अवसर पर प्रधानाचार्य ने सभाध्यक्ष का कार्य सम्पन्न किया। विशिष्ट अतिथियों सहित गणमान्य सज्जन उपस्थित थे। डॉ० राजबहादुर राय ने स्वयं सेवकों से कहा कि जिस तरह स्वयं सेवकों ने अपना सेवा सात दिनों तक किये है, वह सराहनीय है। डॉ० शम्भु शंकर सिंह ने स्वयं सेवकों को सेवा के प्रति समर्पित रहने की अपील की।●

भजन

बड़ा जतन से पवल मानुष के तन
हरि भजन में लगालऽ आपन मन
होई जिन्दगी में सुख के बिहानवाँ ना
सिया रामजी के करिलऽ भजनवाँ ना।। टेक।।
राम नाम रटबऽत भाग तोहार जागी
दुई राम में ना दाम कुछुओ लागी
जतने टाइम मिले करिल सुमिरनवाँ ना
सियाराम जी के करिलऽ भजनवाँ ना।। टेक।।
राम नाम बाटे केवल तरन के आधार हो
जे भी प्राणि मन से ध्यावे होवे बेड़ा पार हो
बतिया लिखल बडुवे वेद आ पुरानवाँ ना
सियाराम जी के करिलऽ भजनवाँ ना।। टेक।।
रामजी के ध्यावत रहस शम्भु त्रिपुरारी
हनुमत जी मन से ध्यवनी जाने दुनियाँ सारी
रचे राज बहादुर हरि के भजनवाँ ना
सिया रामजी के करिलऽ भजनवाँ ना।। टेक।।

राष्ट्रीय गीत

भारत हमारा प्राणों से प्यारा सदा
इसका गौरव बढ़ाकर रहेंगे
कोई कुहब्ति गर इसमें दिखाई तो हम
उसका चमड़ा छुड़ाकर रहेगें।। टेक।।
सिंचा अपने खून से स्वतंत्रता सेनानी
हिन्दी है हम सारा मुल्क हिस्दुस्तानी
कोई इसके गौरव पर ऊँगली उठाई
तो हम दिन में तरई दिखाकर रहेगें।
भारत हमारा।। टेक।।
अखंडता भारत की तो जमी हुई है
सेना में किसी चीज की कमी नहीं हैं
हिन्दु मुस्लिम हैं एक सिख इसाई
तो हम दुश्मनों का छक्का छुड़ाकर रहेंगे–टेक

डा० राजबहादुर राय
विभागाध्यक्ष, राजनीति शास्त्र, ए. एस. कॉलेज बिक्रमगंज